श्री महावीराय नमः

श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए

(ज्ञान समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है)

जय गुरु हीरा

जय गुरु मान

जैन धर्म कोविद

सातवीं कक्षा

अ. भा. श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

जोधपुर

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रधान कार्यालय :

घोड़ों का चौक, जोधपुर -342 001 (राजस्थान)

फोन : 0291-2630490 फैक्स : 0291-2630490, 2636763

सूत्र विभाग-

दशवैकालिक सूत्र : तृतीय अध्ययन
खुड्डियायारकहा (क्षुल्लकाचार कथा)

निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिए अनाचीर्ण

मूल– संजमे सुट्ठिअप्पाणं, विप्पमुक्काण ताइणं।
तेसिमेयमणाइण्णं, निग्गंथाण महेसिणं।।1।।

अन्वयार्थ– संजमे– संयम में। **सुट्ठि अप्पाणं–** सुस्थित आत्मा वाले। **विप्पमुक्काण–** बाह्य एवं आभ्यंतर परिग्रह से मुक्त। **ताइणं–** षट्काय जीवों के रक्षक। **तेसिं–** उन। **निग्गंथाण महेसिणं–** निर्ग्रन्थ महर्षियों के। **एयं–** ये आगे कहे जाने वाले कार्य। **अणाइण्णं–** अनाचीर्ण हैं अर्थात् नहीं करने योग्य हैं।

भावार्थ– संयम धर्म में स्थिर, परिग्रह से मुक्त और षट्कायिक जीवों के रक्षक निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिये ये कार्य आचरण में निषिद्ध माने गये हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है –

अनाचीर्णों के नाम

मूल– उद्देसियं[1], कीयगडं[2], नियागमभिहडाणि[3,4] य।
राइभत्ते[5] सिणाणे[6] य, गंधमल्ले[7,8] य वीअणे[9]।।2।।

अन्वयार्थ– उद्देसियं– साधु को देने के उद्देश्य से बनाया गया आहार। **कीयगडं–** साधु के लिए खरीद कर दिया गया अशन वसनादि। **नियागं–** आमन्त्रणपूर्वक नित्य दिया गया आहारादि। **अभिहडाणि–** सामने लाकर दिया गया आहारादि। **य–** और। **राइभत्ते–** रात्रि भोजन। **सिणाणे–** स्नान करना। **य–** और। **गंध–** सुगन्धित पदार्थ- केसर-चन्दनादि का लेप करना। **मल्ले–** फूल माला आदि धारण करना। **य–** और। **वीअणे (वीयणे)–** पंखे आदि से हवा करना।

मूल– सन्निही[10] गिहिमत्ते[11] य,
रायपिंडे[12] किमिच्छए[13]।
संवाहणा[14] दंत पहोयणा[15] य,
संपुच्छणा[16] देह पलोयणा[17] य।।3।।

अन्वयार्थ– सन्निही– घृत, तेल आदि का संग्रह रखना। **गिहिमत्ते य–** और गृहस्थ के पात्र थाल-कटोरे आदि भाजनों (बर्तनों) में आहार करना। **रायपिंडे–** राजपिंड का सेवन करना। **किमिच्छए–** जहाँ पूछकर इच्छानुसार दिया जाय, वैसी दानशाला से आहारादि लेना। **संवाहणा–** मर्दन करना (मालिश करना)। **दंत पहोयणा य–** और दाँतों को धोना। **देह पलोयणा य–** और दर्पण आदि में मुख देखना। **संपुच्छणा–** गृहस्थ से सावद्य प्रश्न करना या उसकी कुशल क्षेम पूछना।

मूल– अट्ठावए य नालीए[18], छत्तस्स य धारणट्ठाए[19]।
तेगिच्छं[20] पाहणा पाए[21], समारंभं च जोइणो[22]।।4।।

अन्वयार्थ– अट्ठावए– अष्टापद-जुआ। **य–** और। **नालीए–** पासों से खेल खेलना। **छत्तस्स य धारणट्ठाए–** और बिना कारण छत्र धारण करना। **तेगिच्छं–** सावद्य चिकित्सा करना। **पाहणा पाए–** पैरों में चप्पल, जूता आदि पहनना। **समारंभं च जोइणो–** और अग्नि का आरम्भ करना, बिजली जलाना आदि।

मूल– सिज्जायर पिंडं[23] च, आसंदी[24] पलियंकए[25]।
गिहंतर निसिज्जा[26] य, गायस्सुवट्टणाणि[27] य।।5।।

अन्वयार्थ– सिज्जायर पिंडं– शय्यादाता के यहाँ से आहारादि लेना। **च आसंदी–** और बेंत आदि से बने कुर्सी या मूढ़े आदि पर बैठना। **पलियंकए–** पलंग का उपयोग करना, उस पर बैठना, सोना। **गिहंतर निसिज्जा (निसेज्जा) य–** गृहस्थ के घर में या दो घरों के बीच में बैठना। **य–** और। **गायस्सुव्वट्टणाणि–** शरीर पर उबटन करना।

मूल– गिहिणो वेयावडियं[28], जा य आजीव-वत्तिया[29]। तत्तानिव्वुडभोइत्तं[30], आउरस्सरणाणि[31] य।।6।।

अन्वयार्थ– गिहिणो– गृहस्थ की। **वेयावडियं–** वैयावच्च (सेवा) करना या कराना। **य–** और। **जा–** जो। **आजीव-वत्तिया–** कुल, जाति आदि बताकर जीविका चलाना। **तत्तानिव्वुडभोइत्तं–** अच्छी तरह प्रासुक नहीं हों, ऐसे मिश्र जलादि का उपयोग करना। **य–** और। **आउरस्सरणाणि–** रोग आदि कष्ट के समय कुटुम्बीजन का या पूर्व में भोगे हुए पदार्थों का स्मरण करना।

भावार्थ– जैन निर्ग्रन्थ धैर्यवान् और निस्पृह होता है। वह गृहस्थ से सेवा नहीं लेता, क्योंकि उसका जीवन स्वाश्रयी है। अपने कुल आदि का परिचय देकर भिक्षा नहीं लेता, मिश्रजल का उपयोग और रूग्णावस्था में परिजनों का स्मरण भी नहीं करता, क्योंकि उसको राग विजय करना है।

मूल– मूलए[32] सिंगबेरे[33] य, उच्छुखंडे[34] अनिव्वुडे।
कंदे[35] मूले[36] य सचित्ते, फले[37] बीए[38] य आमए।।7।।

अन्वयार्थ– मूलए– मूला। **य–** और। **सिंगबेरे–** अदरख। **उच्छुखंडे–** इक्षु के खण्ड (टुकड़े) **अनिव्वुडे–** बिना पका हुआ (ये सब कच्चे लेना)। **कंदे–** सूरणकंद आदि कंद। **य–** और। **मूले सचित्ते–** सचित्त लता, वृक्षादि के फल-फूल या उनकी जड़ें। **य–** और। **फले य–** फल तथा। **आमए–** कच्चे। **बीए–** बीज।

भावार्थ– जैन मुनि अचित्त वस्तुओं का भोजी होता है, इसलिये वह (मूला) मूली, अदरख, कच्चे इक्षु खण्ड, सचित्त कंद, मूल और कच्चे फल तथा तिल, ज्वार आदि सचित्त बीजों का उपयोग भी नहीं करता, क्योंकि इनके सेवन से जीव-हिंसा की वृद्धि होती है। अतः पूर्ण हिंसा-त्यागी मुनि इनका वर्जन करता है।

मूल– सोवच्चले[39] सिंधवे[40] लोणे, रोमालोणे[41] य आमए।
सामुद्दे[42] पंसुखारे[43] य, कालालोणे[44] य आमए।।8।।

अन्वयार्थ– आमए– सचित्त-कच्चा। **सोवच्चले–** संचल नमक। **सिंधवे लोणे–** सैंधा नमक। **य रोमालोणे–** और रोम का नमक। **सामुद्दे–** समुद्र का नमक। **च–** और। **पंसुखारे–** ऊसर भूमि का क्षार। **आमए–** सचित्त। **य कालालोणे–** और काला नमक।

भावार्थ– जैन साधु के लिए सचित्त नमक अग्राह्य बतलाया है, कारण कि कच्चे नमक में असंख्य पृथ्वीकाय के जीव माने गये हैं। त्यागी मुनि के लिए 1. संचल लवण, 2. सैंधव लवण, 4. रोम का लवण,

4. समुद्री लवण, 5. ऊसर भूमि का लवण और, 6. काला लवण, इन्हें सचित्त होने पर ग्रहण करना वर्जित है।

अग्नि पर पकाये गये तथा नींबू आदि में गाला गया अचित्त नमक ही जैन साधु द्वारा ग्रहण किया जाता है, शेष नहीं।

मूल– धूवणे[45] त्ति वमणे[46] य, वत्थीकम्म[47] विरेयणे[48]।
अंजणे[49] दंतवणे[50] य, गायब्भंग[51] विभूसणे[52]।।9।।

अन्वयार्थ– धूवणे त्ति– अगर आदि का धूप करना। **य–** और। **वमणे–** औषधि के द्वारा वमन करना। **वत्थिकम्म**– बस्ति कर्म (मल शोधन के लिए तेल, गुटिका या एनिमा लेना)। **विरेयणे**– विरेचन-जुलाब लेना। **अंजणे–** आँख में अंजन करना। **य–** और। **दंतवणे–** दाँतुन करना। **गायब्भंग–** बिना कारण तैलादि की मालिश करना। **विभूसणे–** शरीर की सजावट करना।

भावार्थ– जैन श्रमण शरीर की शोभा के लिए धूप, वमन, विरेचन, बस्तीकर्म, अंजन, दाँतुन, शरीर-मालिश और विभूषा आदि का आचरण नहीं करता। इनसे जीव हिंसा के साथ रागवृद्धि भी संभव है। अतः ये सब पदार्थ उसके लिए अनाचीर्ण माने गये हैं।

निर्ग्रन्थों के लिये पूर्वोक्त अनाचीर्ण अनाचरणीय

मूल– सव्वमेयमणाइण्णं, निग्गंथाण महेसिणं।
संजमम्मि य जुत्ताणं, लहुभूयविहारिणं।।10।।

अन्वयार्थ– एयं– उपर्युक्त ये। **सव्वं**– सब। **निग्गंथाण**– निर्ग्रन्थ। **महेसिणं**– महर्षियों के लिए जो। **संजमम्मि**– संयम साधना में, **जुत्ताणं**– लगे हुए। **य–** और। **लहुभूय विहारिणं–** उपधि की अल्पता से लघुभूत विहारी हैं, उनके लिये। **अणाइण्णं–** अनाचीर्ण हैं।।10।।

भावार्थ– संयम साधना में तत्पर और लघुभूत विहारी निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिए उपर्युक्त सभी कार्य अनाचीर्ण कहे गये हैं।

निर्ग्रन्थों का विशिष्ट आचार

मूल– पंचासव-परिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया।
पंचनिग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदंसिणो।।11।।

अन्वयार्थ– पंचासवपरिण्णाया– हिंसा आदि 5 आश्रवों को ज्ञानपूर्वक त्यागने वाले। **तिगुत्ता**– मन, वचन, कायरूप तीन गुप्ति वाले। **छसु**– षट्काय के जीवों पर। **संजया**– दया करने वाले संयमी। **पंचनिग्गहणा**– पाँच इन्द्रियों को वश में करने वाले। **धीरा**– धीर। **निग्गंथा**– निर्ग्रन्थ। **उज्जुदंसिणो**– सरल स्वभाव वाले होते हैं।

भावार्थ– निर्ग्रन्थ पाँच आश्रवों के त्यागी, तीन गुप्तियों से गुप्त, षट्काय जीवों की यतना करने वाले, पाँच इन्द्रियों को वश में रखने वाले, धीर और ऋजुदर्शी होते हैं।

मूल– आयावयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउडा।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया।।12।।

अन्वयार्थ– गिम्हेसु- ग्रीष्मकाल में, **आयावयंति-** सूर्य की आतापना लेते हैं। **हेमंतेसु-** शीतकाल में। **अवाउडा-** शरीर से वस्त्र हटा देते हैं। **वासासु-** वर्षाकाल में। **पडिसंलीणा-** इन्द्रियों को वश में रखने वाले। **संजया-** संयमी साधु। **सुसमाहिया-** उत्तम समाधि वाले होते हैं।

भावार्थ– मुनि ग्रीष्मकाल में सूर्य की आतापना लेते हैं, शीतकाल में खुले बदन शीत सहन करते हैं और वर्षा ऋतु में कायिक चेष्टाओं को वश में रखकर समाधि भाव में लीन रहते हैं।

मूल– परीसह-रिऊदंता, धूअमोहा जिइंदिया।
सव्व दुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो।।13।।

अन्वयार्थ– परीसह रिऊदंता- परीषह रूपी शत्रुओं का दमन करने वाले। **धूअमोहा-** मोह को अलग हटाने वाले। **जिइंदिया-** जितेन्द्रिय। **महेसिणो-** महर्षि। **सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा-** सब दुःखों का नाश करने के लिये। **पक्कमंति-** पराक्रम करते हैं, संयम साधना में जोर लगाते हैं।

भावार्थ– निर्ग्रन्थ क्षुधा-पिपासादि परीषहों को सहन करने वाले, मोह रहित और जितेन्द्रिय होते हैं। ऐसे महर्षि दुःख मुक्ति के लिए आत्म-साधना में अपनी शक्ति लगाते हैं।

शुद्ध श्रमणाचार-पालन का फल

मूल– दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहित्तु य।
के इत्थ देवलोएसु, केई सिज्झंति नीरया।।14।।

अन्वयार्थ– दुक्कराइं- दुष्कर क्रियाओं को। **करित्ताणं-** करके। **य-** और। **दुस्सहाइं-** दुःस्सह परीषहों को। **सहित्तु-** सहन करके। **केइत्थ-** कितने ही। **देवलोएसु-** देवलोकों में उत्पन्न होते हैं। **केई-** कितने ही। **नीरया-** कर्म रज से रहित होकर। **सिज्झंति-** सिद्ध हो जाते हैं।

भावार्थ– निर्ग्रन्थचर्या को अपना करके, दुष्कर तप-नियमों का आचरण करके और दुस्सह परीषहों को सहन करके कई साधक तो सर्वथा कर्म रज को दूर कर सिद्ध हो जाते हैं और कई उच्च देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।

मूल– खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।
सिद्धि-मग्ग-मणुप्पत्ता, ताइणो परिनिव्वुडे।।15।। -त्ति बेमि।

अन्वयार्थ– सिद्धिमग्गमणुप्पत्ता- मोक्ष मार्ग के साधक। **संजमेण-** संयम से। **य-** और। **तवेण-** तपस्या से। **पुव्वकम्माइं-** पूर्व संचित कर्मों को। **खवित्ता-** क्षय करके। **ताइणो-** षट्काय-जीव के रक्षक मुनि। **परिनिव्वुडे-** परिनिर्वाण (पूर्ण शान्ति) प्राप्त करते हैं। **त्ति बेमि-** ऐसा मैं कहता हूँ।

भावार्थ– अवशेष कर्मों को खपाने के लिए वे देवलोक से आकर मनुष्य भव धारण करते हैं, जहाँ संयम और तप से संचित कर्मों का क्षय करके सिद्धि मार्ग पर चलते हुए, जीव मात्र के रक्षक मुनि अन्त में निराबाध सुख की प्राप्ति करते हैं। ऐसा मैं कहता हूँ।

।।तृतीय अध्ययन समाप्त।।

अंतगड सूत्र सम्बन्धी
प्रश्नोत्तर

प्रश्न- 1. एक ही अंधकवृष्णि पिता और धारिणी माता के अठारह पुत्रों का वर्णन अन्तगड सूत्र के पहले और दूसरे, इन दो वर्गों में किया गया है एवं सागर, समुद्र, अक्षोभ और अचल इन चार नामों में समानता भी है। अतः जिज्ञासा होती है कि क्या ये सभी सहोदर भ्राता थे?

उत्तर- अंतगडदशा सूत्र के प्रथम एवं द्वितीय वर्ग के 18 (अठारह) ही अध्ययनों के लिए दो प्रकार की मान्यताएं प्रचलित हैं- 1. श्रावक दलपतराय जी प्रमुख 'दोनों वर्गों' में सादृश्य होने से प्रथम वर्ग के दसों व्यक्तियों का अंधकवृष्णि के पुत्र और धारिणी रानी के अंगजात सहोदर भाई मानते हैं और दूसरे वर्ग के आठों कुमारों को प्रथम वर्ग के दसवें अध्ययन में वर्णित विष्णु (पाठांतर-वृष्णि) कुमार के पुत्र अर्थात् अंधकवृष्णि के पौत्र मानते हैं।

दूसरी मान्यता- पूज्य श्री जयमलजी महाराज प्रमुख प्रथम वर्ग के दसवें अध्ययन का नाम वृष्णिकुमार नहीं मानकर 'विष्णुकुमार' मानते हैं और द्वितीय वर्ग में वर्णित वृष्णि को अंधकवृष्णि मानकर अठारह ही कुमारों को सहोदर भाई मानते हैं। जैसा कि उनके द्वारा रचित बड़ी साधु वंदना में कहा है-

'गौतमादिक कुंवर, सगा अठारह भ्रात।
सर्व अंधक विष्णु सुत धारणी ज्यांरी मात।।

'अंधकवृष्णि राजा के 10 सहोदर पुत्र तो राजा बन जाने के कारण एवं बलदेव वासुदेव के वंश के होने के कारण दश दशार्ह के रूप में प्रसिद्ध हुए, शेष धारिणी आदि अनेक रानियों से अनेक पुत्र हुए- वे कुमार पद से ही दीक्षित हो गये। द्वितीय वर्ग में वर्णित आठ कुमार दशवें वृष्णि कुमार के पुत्र थे। (प्रथम वर्ग के दशवें अध्ययन विष्णु का कहीं कहीं पर 'वृष्णि' पाठान्तर भी मिलता है।) वृष्णिकुमार राजा नहीं बनने से उनको द्वितीय वर्ग में राजा नहीं बताया गया है। इस प्रकार दोनों वर्गों के अठारह कुमारों को सहोदर भाई नहीं मानने की तरफ ही ज्यादा झुकाव होता है।' बाकी तो विशिष्ट ज्ञानी कहे वही प्रमाण है।

प्रश्न-2. 'चामीगर पागारा' से क्या आशय समझना चाहिए?

उत्तर- 'चामीगर पागारा'- स्वर्ण से निर्मित परकोट- जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के तीसरे वक्षस्कार में चक्रवर्ती भरत जी की राजधानी विनीता और अन्तगढ सूत्र में वासुदेव श्री कृष्ण जी की राजधानी द्वारिका के चारों ओर स्वर्ण परकोट देवताओं द्वारा निर्मित बताया गया है। वैक्रिय पुद्गलों का परकोट इतनी लम्बी अवधि तक रहना शक्य नहीं है। औदारिक पुद्गलों के अन्तर्गत जो सोना स्वामित्व रहित भू-भाग, भू-गर्भ में पड़ा रहता है, उसे लाकर परकोट निर्मित किया जाता है।

प्रश्न- 3. सोमिल के लिए आया कि वह जिस दिशा से आया, उसी दिशा की ओर चला गया, इसका क्या आशय है?

उत्तर- मुख्य मार्ग

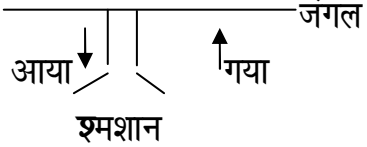

जंगल से आया, द्वारिका की ओर गया, यहाँ उसकी विवक्षा नहीं समझकर आम रास्ते से श्मशान के अन्दर आने और वापस आम रास्ते की ओर जाने की दिशा समझनी चाहिए।

प्रश्न- 4. निम्नांकित को स्पष्ट कीजिए- अ. पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, ब. गामाणुगामं दूइज्जमाणे, स. सुहं सुहेणं विहरमाणे।

उत्तर- अ. पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे - पूर्वानुपूर्वी- अनुयोग द्वार सूत्र में पूर्वानुपूर्वी आदि का विवेचन उपलब्ध है। चौबीस तीर्थंकरों की पूर्वानुपूर्वी ऋषभ, अजित..... पार्श्व, महावीर के रूप में बताई गई हैं। वहाँ इसी क्रम से चली आ रही परिपाटी समझना। अर्थात् इस अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर अथवा अनादि कालीन तीर्थंकरों की परम्परा पाद विहार की ही रही है।

ब. गामाणुगामं दूइज्जमाणे - विशिष्ट लब्धिधारी- आकाशगामिनी विद्या से, जंघाचरण- विद्याचरण आदि भी प्रसंगवश आकाश से सीधे जा सकते हैं, जैसे वायुयान। किन्तु विहार का सामान्य क्रम थल पर चलने वाले वाहनों की भाँति ग्रामानुग्राम पैदल विहार करने का है।

स. सुहं सुहेणं विहरमाणे - ठाणांग सूत्र के नवमें ठाणे में आया कि लगातार या निरन्तर चलने से भी रोग उत्पन्न हो सकता है। इसलिए सुखे-सुखे विहार करने का उल्लेख आया। दूसरी अपेक्षा सुख-साता होने पर कल्प उपरान्त कहीं नहीं ठहरना भी ध्वनित होता है। शरीर और संयम की बाधा न हो, इस प्रकार विचरण करना, शरीर भी स्वस्थ रहे और संयम भी निर्मल रहे, धर्मध्यान चलता रहे।

प्रश्न- 5. दीक्षार्थी को दीक्षा लेने से पूर्व एक दिन के लिए राजा क्यों बनाया जाता था?

उत्तर- दीक्षा के लिए दृढ़ संकल्पित वैरागी को अब और रोक पाना शक्य नहीं, तब उसे राजा के रूप में देखने के आन्तरिक भावों से माता-पिता एक दिन के लिए राजा बनने का प्रस्ताव रखते हैं। मोहाधीन माता-पिता आज भी विरक्त-विरक्ता का श्रृंगार दुल्हे-दुल्हन से भी बढ़कर करते हैं। उनकी आंखों को तृप्ति मिलती है, मन आनन्दित होता है, साथ ही विरक्त की विरक्ति, मोह-विजय की दृढ़ भावना भी परिलक्षित हो जाती है।

प्रश्न- 6. 'संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ' का क्या आशय है?

उत्तर- संयम के अभाव में भी तप होता है, जिसे बाल तप कहते हैं। लक्ष्य के अभाव में की गई साधना मूल सहित दुःखों का अन्त नहीं कर सकती। लक्ष्य की ओर गतिशील होते ही संयमपूर्वक तप की साधना प्रारंभ हो जाती है। जहाँ भी संयम है, वहाँ सकाम निर्जरा अर्थात् तप की नियमा है। अस्तु संयमेन तपसा, संयमपूर्वक तप साधना आत्महितकारी है।

प्रश्न- 7. कुलदेवी या कुलदेवता की सांसारिक कार्यों में सहायता प्राप्त करने से सम्यक्त्व में दोष लगता है अथवा नहीं?

उत्तर- कुलदेवी या कुलदेवता की सांसारिक कार्यों में सहायता प्राप्त करने में यद्यपि सम्यक्त्व में स्पष्ट रूप से कोई दोष नहीं बताया, तथापि यह प्रवृत्ति देव सहायता रूप होने से प्रशंसनीय एवं उचित नहीं कही जाती है। देवादि की सहायता नहीं चाहना, यह श्रावक की उच्च कोटि है। कई बार कमजोर श्रावकों की भक्ति धर्म से भी अधिक इन कुलदेवी आदि पर हो जाती है। इत्यादि कारणों से उसकी समकित शिथिल एवं नष्ट तक हो सकती है। जैसे औषधोपचार से असाता का उदय रूककर साता की उदीरणा हो जाती है, वैसे ही देव भी साता असाता की उदीरणा में निमित्त बन सकते हैं। शरीर में रोगांतकों का प्रवेश भी करा सकते हैं एवं शरीर से रोगांतक निकाल भी सकते हैं। देव आराधना के लिए अट्ठम तप की आराधना करते समय कृष्ण एवं अभयकुमार के समकिती होने में बाधा नहीं आती है।

प्रश्न- 8. सोमिल पर गजसुकुमाल मुनि को द्वेष नहीं आया, किन्तु कृष्ण महाराज को द्वेष आ गया, इसका क्या कारण है?

उत्तर- गजसुकुमाल मुनि ने शरीरादि का राग छोड़ दिया था, इसलिए उन्हें सोमिल पर द्वेष नहीं आया, किन्तु कृष्ण महाराज का गजसुकुमाल मुनि पर राग था, इसलिए सोमिल पर द्वेष जागृत हो गया।

प्रश्न- 9. श्रीकृष्ण ने द्वारिका नगरी के विनाश का कारण भगवान से क्यों पूछा?

उत्तर- तीन खण्ड के अधिपति श्रीकृष्ण ने जब अपनी ही नगरी में अपने ही छोटे भाई निर्ग्रन्थ साधु और वह भी भगवान अरिष्टनेमि के अन्तेवासी गजसुकुमाल मुनि की अकाल मृत्यु पर विचार किया तो उन्हें अपनी पुण्यवानी में मंदता होती दिखाई दी। उन्होंने सोचा- इन दिनों जब मेरे भाई की यह दशा हो गई तो अगले दिनों मेरी तथा मेरी इस सुनहरी नगरी की और इस विशाल वैभव की क्या दशा होगी? अनुमान है, इन चिन्ताओं से प्रेरित होकर श्रीकृष्ण ने भगवान से द्वारिका के विनाश का कारण पूछा हो।

प्रश्न- 10. सुरा, अग्नि एवं द्वीपायन ऋषि, ये द्वारिका विनाश के कारण क्यों और कैसे बने?

उत्तर- द्वीपायन ऋषि ने जब अपने द्वारा द्वारिका के विनाश का भगवत् वचन सुना तो इस निमित्त से बचने के लिये नगरी के बाहर आश्रम में रहने लगा। श्रीकृष्ण ने सुरा (मदिरा) को भी नाश का कारण जानकर द्वारिका नगरी के बाहर फिंकवा दिया। एक दिन कुछ यादव नगरी के बाहर गये, वहाँ उन्हें खेलते-खेलते प्यास लगी, वे पानी की तलाश में द्वीपायन ऋषि के आश्रम की तरफ आ गये तथा गड्ढ़ों में भरी हुई शराब पी ली, कुछ आगे बढ़ने पर द्वीपायन ऋषि यज्ञ करता दिखाई दिया। नशे में उन्होंने मरे हुए सर्प को उठाकर द्वीपायन ऋषि पर डाल दिया तथा खूब परेशान किया। ऐसा करने पर क्रोधित होकर द्वीपायन ऋषि ने द्वारिका का विनाश करने का निदान कर लिया।

श्रीकृष्ण एवं बलभद्र की अनुनय-विनय से उन दोनों को नहीं जलाने का वचन दिया। कृष्ण ने तप को द्वारिका-विनाश से बचाने का उपाय समझकर घर-घर में आयंबिलादि तप करवाना आरम्भ करा दिया। द्वीपायन ऋषि अकाम निर्जरा के कारण मरकर अग्निकुमार जाति का देव बना। वह अपने पूर्व भव का उपयोग लगाकर क्रोधित हो गया। कहा जाता है कि तप के प्रभाव से बारह वर्ष तक वह द्वारिका को न जला सका।

द्वारिका में बारहवें वर्ष में तपाराधना बहुत मन्द हो गई। अन्त में तप का प्रभाव न रहने से अग्निकुमार देव ने संवर्तक वायु चलाना शुरू कर दिया। जिससे आस-पास के तृण, काष्ठादि का हवा से संयोग होने से द्वारिका तेजी से जलने लगी। छह मास तक जलती रही। निकट के समुद्र का अपार जल भी उसे बुझाने के काम न आ सका।

प्रश्न- 11. निदान किसे कहते हैं? वह कितने प्रकार का है एवं उसके क्या-क्या फल होते हैं?

उत्तर- निदान जैन धर्म का एक पारिभाषिक शब्द है। जब मोक्ष-मार्ग का साधक अपने जीवनभर की तपस्या का फल "मुझे अमुक प्रकार की सांसारिक ऋद्धि मिले" ऐसी चाह-इच्छा करता है तो उसे निदान कहते हैं। अर्थात् "तप के उपलक्ष्य में भौतिक ऋद्धि प्राप्त करने का संकल्प" निदान है। दूसरे शब्दों में निदान, लाखों-करोड़ों के मूल्य वाली वस्तु को एक कोड़ी में बेच देना है।

निदान आत्म-कल्याण-साधना में बाधक है। जब तक उसकी पूर्ति नहीं होती तब तक मोक्ष-प्राप्ति तो क्या, सम्यक्त्व मिलना भी दुर्लभ है। वह महा इच्छा वाला होने से निदानकर्त्ता महारम्भी, अधर्मी होता है, जिससे संसार में भटकता है।

दशाश्रुतस्कन्ध में निदान करने के नौ रूप बतलाये हैं, जो इस प्रकार हैं-

1. कोई साधु, किसी समृद्धिशाली पुरुष (चक्रवर्ती) को देखकर उसकी ऋद्धि प्राप्त करने के लिये निदान करता है।
2. कोई साध्वी, किसी ऋद्धिवन्त स्त्री (श्री देवी) को देखकर उसके सुख प्राप्त हेतु निदान करती है।
3. कोई साधु, पुरुषपना दुःखदायी है, अतः स्त्री बनने के लिये निदान करता है।
4. कोई साध्वी, स्त्रीपने की कठिनाई को देखकर पुरुष के सुखों का भोग करने के लिये निदान करती है।
5. कोई मनुष्य के काम-भोगों को अध्रुव, अशाश्वत व अनित्य समझकर देवरूप में उत्पन्न होने तथा दैवीय सुख भोगने के लिये निदान करते हैं।
6. देव भव में अपनी देवी को वश में करके या वैक्रिय रूप बनाकर सुख भोगने के लिये निदान करना।
7. देव भव में अपनी देवी के साथ सुख भोगने के लिये निदान करना।
8. अगले जन्म में श्रावक बनने हेतु निदान करना।
9. अगले जन्म में साधु बनने हेतु निदान करना।

प्रथम चार निदानों वाला जीव केवली प्ररूपित धर्म नहीं सुन सकता, क्योंकि इन निदानों का फल पाप रूप होता है तथा नरक में दुःख भोगना पड़ता है। पाँचवें निदान वाला जीव धर्म-श्रवण कर सकता है, किन्तु दुर्लभ बोधि होता है। छट्ठे निदान वाला जीव जिनधर्म को सुनकर, समझकर भी अन्य धर्म में रुचि रखता है। सातवें निदान वाला, दर्शन श्रावक एवं आठवें निदान वाला, व्रती श्रावक हो सकता है; परन्तु संयम अंगीकार नहीं कर पाता। इसी तरह नवमें निदान वाला संयमी होकर भी यथाख्यात चारित्र को प्राप्त न कर सकने के कारण सिद्ध-बुद्ध और मुक्त नहीं हो सकता।

प्रश्न- 12. भिक्षु प्रतिमा पालन का विस्तृत वर्णन कौनसे आगम में है? प्रतिमा आराधन के क्या-क्या नियम होते हैं?

उत्तर- प्रतिमाओं के पालन का विस्तृत वर्णन दशाश्रुतस्कन्ध की सातवीं दशा में है। पालन के मुख्य नियम इस प्रकार हैं-

1. पहली प्रतिमा के धारक साधु एक माह तक एक दत्ति अन्न की तथा एक दत्ति पानी की प्रतिदिन लेते हैं। (दत्ति- एक साथ, धार खण्डित हुए बिना, जितना पात्र में पड़े)
2. यह दत्ति एक व्यक्ति के विभाग में आये हुए भोजन में से ली जाती है। गर्भवती या छोटे बच्चे की माँ के लिये बनाया गया भोजन वे नहीं लेते। दुग्धपान छुड़वाकर भिक्षा देने वाली स्त्री से अथवा आसन्न-प्रसवा (जिनका प्रसव काल निकट हो) स्त्री से उसको उठाकर भोजन नहीं लेते। जिसके दोनों पैर देहली के भीतर हो या बाहर हो, उससे भी आहार नहीं लेते। एक पैर भीतर तथा एक पैर देहली के बाहर हो, उससे आहार लेते हैं।
3. प्रतिमाधारी साधु छः प्रकार से भिक्षा ग्रहण करे- 1. पेटी के आकार- सन्दूक के चारों कोनों के आकार से, 2. अर्धपेटी- दो कोनों के आकार से, 3. गौ मूत्र के आकार- एक घर इधर से, दूसरा घर सामने के आगे से, 4. पतंगे के आकार से- एक घर फरस कर बीच-बीच में घर छोड़कर भिक्षा लेना, 5.

शंखावर्त्त- गोल आकार से, 6. गतप्रत्यागत- जाते हुए करे तो आते हुए नहीं तथा आते हुए करे तो जाते हुए नहीं।

4. भिक्षाचरी के लिए दिन के आदि, मध्य और अन्त इन तीन भागों में से किसी एक भाग में जाते हैं।

5. शरीर की शुश्रूषा का त्याग करे, शरीर की ममता से रहित हो तथा देव, मनुष्य तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग समभाव से सहन करे।

6. परिचित स्थान पर एक रात्रि तथा अपरिचित स्थान पर दो रात्रि ठहर सकते हैं।

7. प्रतिमाधारी चार कारण से बोलते हैं- 1. याचना करते, 2. मार्ग पूछते, 3. आज्ञा प्राप्त करते, 4. प्रश्न का उत्तर देते समय।

8. तीन स्थान में निवास करें- 1. बाग-बगीचा, 2. श्मशान- छत्री, 3. वृक्ष के नीचे।

9. तीन प्रकार की शय्या ले सकते हैं- 1. पृथ्वी, 2. शिलापट्ट, 3. काष्ठ का पट्ट।

10. प्रतिमाधारी साधक पाँव से काँटा, आँख से धूल-तृण अपने हाथ से नहीं निकाले।

11. जहाँ सूर्यास्त हो जाये वहाँ से एक कदम भी आगे विहार नहीं करे, सूर्योदय के पश्चात् विहार करे।

12. हाथी, घोड़ा, सिंह आदि हिंसक जानवर आने पर भयभीत होकर मार्ग नहीं छोड़े। किन्तु उनसे कोई जानवर डरता हो तो रास्ता छोड़ देवे। मकान में आग लग जाये और स्त्री आदि आ जावे तो भय से बाहर नहीं निकले।

13. अशुचि निवारण एवं भोजन के पश्चात् हाथ-मुँह आदि धोने के अतिरिक्त, हाथ, पाँव, दाँत, आँख, मुख आदि नहीं धोवे।

प्रश्न- 13. सूत्र में बारह भिक्षु प्रतिमाओं का क्रमशः नियमानुसार पालन करने का विधान है तो श्री गजसुकुमाल मुनि को दीक्षा लेने के पहले दिन ही बारहवीं प्रतिमा अंगीकार करने की आज्ञा कैसे दे दी?

उत्तर- सूत्रों के विधान के अनुसार प्रतिमाओं के पालन करने की आज्ञा साधक के ज्ञान, मानसिक व शारीरिक बल को देखकर अनुक्रम से दी जानी चाहिये। जैसा कि भगवती सूत्र शतक 2 उद्देशक 1 में स्कन्धक अणगार के वर्णन में है। यह व्यवहार मार्ग है और इसका अनुसरण होना ही चाहिये। परन्तु यह परिपाटी आगम व्यवहारी एवं केवलज्ञानियों के लिये लागू नहीं होती है। वे जैसा द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव देखते हैं, वैसी आज्ञा दे सकते हैं। उनके लिये निश्चय पहले और व्यवहार बाद में है। श्री गजसुकुमाल अणगार को आज्ञा देने वाले त्रिकाल ज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थंकर प्रभु थे। इसलिये उनके लिये सूत्र का विधान लागू नहीं होता।

प्रश्न- 14. द्वारिका नगरी का निर्माण कुबेर की मति से हुआ था, तो क्या वह नगरी वैक्रिय पुद्गलों से बनाई गयी थी?

उत्तर- शास्त्रकारों ने वर्णन किया है कि द्वारिका की रचना कुबेरदेव की बुद्धि से हुई थी। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह नगरी वैक्रिय पुद्गलों से बनाई गयी थी। क्योंकि वैक्रिय का तात्पर्य है - अनेक रूप धारण करना, जो नगरी के वर्णन में नहीं मिलता। नगरी के निर्माण से नष्ट होने तक उसमें विशेष परिवर्तन का उल्लेख नहीं है। वैक्रिय पुद्गलों की स्थिति अल्प होती है, वे जलाये भी नहीं जा सकते।

ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे के उद्देशक 3 में बतलाया कि चारों शरीर जीव सहगत होते हैं, अर्थात् ये प्रायः जीव से भिन्न नहीं पाये जाते। केवल औदारिक ही ऐसा शरीर है जो बिना जीव के भी मिलता और दिखाई देता है। संसार में जितने भी जीव या अजीव के पुद्गल दिखाई देते हैं वे सब औदारिक शरीर या उसके अवशेष हैं। अतः स्पष्ट हुआ कि द्वारिका नगरी देव द्वारा औदारिक पुद्गलों से बनाई गई थी। औदारिक पुद्गल होने से ही वह देव द्वारा जलाकर नष्ट कर दी गई थी।

प्रश्न- 15. क्या छप्पन करोड़ यादव द्वारिका नगरी में ही रहते थे?

उत्तर- आगमकारों ने द्वारिका का वर्णन करते हुए अंतगड सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में लिखा है- प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमार, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा थे। कृष्ण वासुदेव सम्पूर्ण आधे भरत में राज्य करते थे। अतः छप्पन करोड़ यादव पूरे अर्ध-भरत में रहना सम्भव है।

प्रश्न- 16. साधुओं को राजपिण्ड लेना निषिद्ध है, ऐसी दशा में मुनिराजों ने देवकी महारानी के यहाँ से सिंह केसरी मोदक कैसे ग्रहण किये?

उत्तर- राजपिण्ड न लेने की विधि प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं के लिये है, मध्य के 22 तीर्थंकरों के साधुओं के लिये नहीं (भगवती शतक 26 उद्देशक 6-7)। देवकी महारानी के यहाँ से सिंहकेसरी मोदक लाने वाले मुनिराज 22वें तीर्थंकर के समय के साधु थे। अतः उनके द्वारा राजपिण्ड ग्रहण करना कल्प की ऐच्छिकता है।

प्रश्न- 17. प्रश्न- श्री कृष्ण जैसे विनीत पुत्र क्या अपनी माता की चरण वन्दना के लिए छह-छह माह में ही जाते थे?

उत्तर- श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव का उनके पूर्व भव में किये हुए निदान के कारण 72000 (बहत्तर हजार) कन्याओं ने वरण किया था। अतः श्रीकृष्ण के कुल बहत्तर हजार माताएँ थीं। वे प्रतिदिन 400 माताओं के चरण-वन्दन के लिये जाते थे। नित्य 400 माताओं को वन्दना करने पर 72000 माताओं की छह मास में वन्दना पूरी होती थी। अतः देवकी महारानी की चरण-वन्दना के लिये भी श्रीकृष्ण को छह मास लग जाते थे।

पद वंदना के नियमित क्रम में छह मास का उपर्युक्त कथन अपेक्षा विशेष से ही समझना चाहिए। वे परम विनीत और मातृभक्त थे। विशेष कार्य माता की चिन्ता आदि की सूचना प्राप्त होने पर वे राजकार्य छोड़कर भी पहले सेवा में संलग्न होते थे। दासियों द्वारा मातृ चिन्ता ज्ञात होने पर वे माता के चरणों में उपस्थित हुए और चिन्ता के कारण के सम्बन्ध में देव सहयोग लेने पौषधशाला में पहुँच तेले की आराधना में लग गये।

तीन दिन तक सभी कार्यों को गौण कर माता के कार्य को प्रधानता देना उनकी विनय भक्ति का जीवन्त उदाहरण है।

प्रश्न- 18. प्रतिदिन 400 माताओं की वन्दना कैसे सम्भव है? उसमें कितना समय लगता होगा?

उत्तर- संभव है वे माताएँ एक प्रासाद में रहती होंगी और उन्हें कृष्ण सामूहिक सिर झुकाकर वन्दन कर लेते होंगे। इस प्रकार यह कार्य अल्प समय में ही हो जाता होगा। जैसे श्री सुधर्मा स्वामी आदि के साथ विचरने वाले 500 मुनियों की वन्दना अल्प समय में सम्भव है।

प्रश्न- 19. श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में भाव यह ज्ञात हो जाने के पश्चात् भी कि आगामी चौबीसी में वे बारहवें तीर्थंकर बनेंगे, किन्तु फिर भी किसी साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका ने उन्हें वन्दन किया हो, ऐसा उल्लेख क्यों नहीं?

उत्तर- जैन धर्म में भाव निक्षेप मुख्य है। भाव निक्षेप जिसमें मिले, उसी नाम, स्थापना एवं द्रव्य निक्षेप वालों को जैन धर्म वन्दनीय मानता है। श्रीकृष्ण के तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध अवश्य हो चुका था, किन्तु उस समय तीर्थंकर का भाव निक्षेप नहीं होने से किसी ने उन्हें वन्दन-नमस्कार नहीं किया।

प्रश्न- 20. देवकी का भविष्य कहने वाले अतिमुक्त कुमार श्रमण कौनसे थे? क्या ये अंतगड सूत्र में वर्णित अतिमुक्तकुमार ही थे? यदि नहीं तो वे किस तीर्थंकर के समय में हुए?

उत्तर- देवकी को पोलासपुरी नगरी में भविष्य कहने वाले अतिमुक्त कुमार, अंतगड सूत्र में वर्णित श्रमण भगवान महावीर के शिष्य अतिमुक्त मुनि (एवन्ता मुनि) से भिन्न है। ये इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ के शासनवर्ती हैं। अतिमुक्त मुनि कंसराजा के छोटे भाई थे। जब उग्रसेन को कारावास में डालकर कंस स्वयं मथुरा का राजा बन गया तो अतिमुक्त कुमार को वैराग्य हो गया। उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली और उग्र तप करने लगे। दीक्षित होकर उन्होंने मासखमण की तपस्या की। एक बार मथुरा में विचरण करते हुए और भिक्षार्थ घूमते हुए उन्होंने कंस के घर में प्रवेश किया। कंस की पत्नी जीवयशा उस समय अपनी ननद देवकी का सिर गूँथ रही थी। अतिमुक्त श्रमण के आने पर जीवयशा उनके जाने के मार्ग पर खड़ी रही और देवर मुनि से हँसी करती हुई बोली- महाराज! तुम्हारा भाई राज्य करता है और तुम झोली लिये घर-घर फिरते हो, इससे हमको बड़ी लज्जा होती है। छोड़ो इस वेश को और राज्य में आ जाओ। इस प्रकार अधिक समय तक हँसी करने पर मुनि से सहन नहीं हो पाया। उन्होंने रुष्ट हो जीवयशा से कहा- क्यों इतना गर्व करती हो, जिसके तुम बाल गूँथ रही हो, उसी बालिका का सातवाँ पुत्र तुम्हें विधवा बनायेगा। वह तुम्हारे पति और पिता दोनों का संहारक होगा। (अभी तुम्हारे पुण्य थोड़े शेष हैं। अतः गर्व मत करो।)

देवकी से कहा कि "तुम समान वय, रंग, जाति, कुल वाले छः पुत्रों को जन्म दोगी। तुम्हारे समान भरत क्षेत्र में अन्य कोई दूसरी माता नहीं होगी।" ऐसा कहकर मुनि चले गये। छः मुनियों को देखकर देवकी को अतिमुक्त मुनि की बात याद आ गई। इस प्रकार ये अतिमुक्त मुनि, भगवान महावीर के शासनवर्ती एवन्ता मुनि से भिन्न हैं।

प्रश्न- 21. समाज में कई सिंघाड़े एक घर से एक ही बार गोचरी लाते हैं, उस दिन दूसरी-तीसरी बार नहीं जाते हैं। इसके लिये अंतगड सूत्र में देवकी के यहाँ मुनियों के तीन सिंघाड़े के जाने के प्रसंग को आधार बताया जाता है कि यदि आज की तरह एक ही घर में दूसरी-तीसरी बार जाने की रीति होती तो देवकी यह नहीं कहती कि श्रीकृष्ण की द्वारिका नगरी में क्या श्रमण निर्ग्रन्थों को भक्तपान प्राप्त नहीं होता, जिससे कि वे उन्हीं कुलों में दूसरी-तीसरी बार प्रवेश करते हैं?

उत्तर- 1. शास्त्र के ये वचन चरितानुवाद के हैं, इसमें भगवान अरिष्टनेमि के मुनियों की चर्या का परिचय प्राप्त होता है एवं उस समय के मुनि कब और किस प्रकार अलग-अलग सिंघाड़े में भिक्षा ग्रहण करते थे, यह बताया गया है। इसमें श्रमण निर्ग्रन्थ को एक घर से एक ही बार गोचरी लाना, दूसरी, तीसरी बार नहीं, ऐसा विधि-निषेध नहीं है।

2. दशवैकालिक सूत्र और आचारांग सूत्र में भिक्षा-विधि का उल्लेख है। उसमें एक घर से एक बार ही भिक्षा लाना, दूसरी बार नहीं, ऐसा विधान नहीं है। यदि एक घर से दूसरी बार लाना कल्प विरूद्ध होता तो अनाचीर्ण में नित्य पिण्ड की तरह द्वितीय पिण्ड को भी अनाचीर्ण कहते। किन्तु वैसा उल्लेख नहीं है, जैसा कि- **उद्देसियं कीयगडं नियागमभिहडाणि य।** दशवै.अ. 3 गाथा- 2

3. प्राचीन समय के धृति एवं संहनन बल वाले श्रमण निर्ग्रन्थ त्याग-तप की भावना से एक बार ही तीसरे प्रहर में आहार कर स्वाध्याय-ध्यान में लीन हो जाते थे, परन्तु जब से अलग-अलग गोचरी न कर सामूहिक करना और दूसरी-तीसरी बार आहार करना प्रारम्भ हुआ, तब से गोचरी लाने का काल भी दूसरी-तीसरी बार हो गया हो, ऐसा सम्भव है।

4. तपस्वी सन्तों के तप-पारणक में भिक्षा के लिये दूसरी-तीसरी बार जाने का उल्लेख भी आगमों में मिलता है।

5. देवकी महारानी स्वयं एक जानकार श्राविका थी, अतः यह नहीं माना जा सकता कि वे शास्त्रीय नियम के विपरीत आचरण करें। यदि एक दिन में एक घर में दूसरी बार गोचरी लेना निषिद्ध होता तो महारानी देवकी दूसरे सिंघाड़े के मुनिराजों को मोदक बहराने से पहले ही प्रश्न पूछती। जबकि उसने तीसरे सिंघाड़े के मुनिराजों को मोदक बहराने के बाद प्रश्न पूछा है।

देवकी के प्रश्न का आशय यह है कि क्या द्वारिका नगरी में लोगों की धार्मिक भावनाएँ इतनी कम हो गयी है कि सन्तों को आहार-पानी भी समय पर नहीं मिल पाता, जिसके कारण एक ही घर में दूसरी-तीसरी बार आना पड़ता है।

प्रश्न- 22. जैसे अपने पुत्र-भगवान महावीर स्वामी को देखकर 82 रात्रि तक अपने पेट में रखने वाली माता देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनों में दूध की धारा निकल आई। उसी तरह माता देवकी को अपने पुत्रों को पहली बार मुनि वेश में देखते ही उसके स्तनों में दूध का बहाव क्यों नही आया?

उत्तर- 83वीं रात्रि में जब गर्भ संहरण हुआ तब मेरे चौदह स्वप्न त्रिशला ने हरे, ऐसा स्वप्न देवानन्दा को आया था, इस कारण तथा अन्य कुछ कारणों से देवानन्दा को यह अनुमान था कि यह वर्द्धमान मेरा ही पुत्र होना चाहिये, अतः उसके स्तनों में दूध का बहाव आया, किन्तु अनीकसेन आदि ये मुनि मेरे पुत्र होने चाहिये, ऐसा देवकी को कोई अनुमान नहीं था, अपितु वह तो पोलासपुरी में अतिमुक्तकुमार मुनि द्वारा कहे वचनों को ही झूँठा मानने लगी थी। अतः अपने पुत्रों को पहली बार देखकर भी उसके स्तनों में दूध का बहाव आना सम्भव नहीं था, क्योंकि मातृपन के भाव जागृत नहीं हुए थे।

प्रश्न- 23. मेरे सहोदर छोटा भाई होगा, यह बात तो देवकी को कृष्ण ने कही, किन्तु उसके दीक्षित होने की बात क्यों नहीं कही?

उत्तर- जिस भावना से देवकी ने पुत्र की अभिलाषा की उसमें कहीं यह बात चिन्ता रूप बनकर रंग में भंग करने वाली न बन जाय, इस विवेक से सम्भव है कृष्ण ने देवकी को अपने छोटे भाई के दीक्षित होने की बात नहीं कही हो।

प्रश्न- 24. सोमिल ने गजसुकुमाल मुनि को कष्ट देकर अपने पूर्वभव का बदला लिया, इससे उसके नये कर्मों का बन्ध हुआ या नहीं?

उत्तर- बदले में कष्ट देना प्रतिहिंसा है। चाहे हिंसा हो या प्रतिहिंसा, दोनों ही कर्मों का बन्ध कराती है। प्रतिरक्षा के लिये की जाने वाली हिंसा भी हिंसा है। (अन्यथा श्रावक को इसका आगार नहीं रखना पड़ता) उससे भी मन्द पापकर्म का बन्ध होता है तो प्रतिहिंसा के लिये की जाने वाली हिंसा से नये कर्म क्यों न बंधेंगे? रक्षा के लिये की जाने वाली हिंसा राजनीति में उचित मानी जा सकती है, परन्तु प्रतिहिंसा तो राजनीति में भी दोषयुक्त मानी गई है। जैसे- किसी बालक ने किसी अन्य बालक को अपशब्द कहे हों या किसी अन्यायी ने पुत्र की हत्या कर दी हो, ऐसी अवस्था में यदि अन्य बालक अपशब्द कहने वाले को पुनः अपशब्द कहता है, या मृत पुत्र का पिता उस अन्यायी की हत्या करता है तो वह भी दण्डनीय समझा जाता है। अतएव गजसुकुमाल की प्रतिहिंसा करने वाले सोमिल को भी पाप बँधा यह मानना चाहिये। यद्यपि गजसुकुमाल की उन्हें दिये गये परीषह से मुक्ति हो गई, किन्तु फिर भी प्रतिरोध एवं बदले की भावना के कारण सोमिल को तो पाप कर्म का बन्ध हुआ ही।

प्रश्न- 25. यदि सोमिल गजसुकुमाल की प्रतिहिंसा न करता तो गजसुकुमाल मोक्ष कैसे जाते?

उत्तर- कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि जिसकी हिंसा की, वही भावी जन्मों में कर्म उदीरणा का निमित्त बन जाता है, पर यह कोई शाश्वत नियम नहीं है कि सर्वदा ऐसा ही हो।

जैसे किसी मुक्तिगामी जीव ने अन्तिम जन्म में अनन्त काय की हिंसा की हो, तो वे सभी जीव तो वापिस उस जीव से बदला ले नहीं पाते। फिर भी वह मुक्तिगामी जीव अनन्तकाय की हिंसा आदि से बन्धे सभी पापकर्म क्षय करके मोक्ष में जाता ही है। अथवा जैसे अर्जुन माली ने कई जीवों की हिंसा की, वे सभी स्त्री पुरुष न जाने कहाँ पर थे, पर अर्जुन माली तो अपने सभी कर्मों का क्षय कर मोक्ष पधार गये।

तत्त्व विभाग

नव तत्त्व का थोकड़ा

नव तत्त्वों के नाम- जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष।

नव तत्त्वों का स्वरूप

1. **जीव तत्त्व-** जिसमें चेतना शक्ति यानी ज्ञान हो, उसे जीव तत्त्व कहते हैं। जीव सुख-दुःख को जानता है और सुख-दुःख को भोगता है। सांसारिक जीव में पर्याप्ति, प्राण, गुणस्थान, योग तथा उपयोग होते हैं। यह आठ कर्मो का कर्त्ता और पुण्य पाप का भोक्ता है। जीव भूतकाल में जीव था, वर्तमान में जीव है और भविष्यत्काल में जीव रहेगा। जीव कभी अजीव नहीं होता।

2. **अजीव तत्त्व-** जो सर्वथा चेतना शून्य-जड़ हो, उसे अजीव तत्त्व कहते हैं। अजीव सुख-दुःख को नहीं जानता, न सुख-दुःख को भोगता ही है। अजीव में पर्याप्ति, प्राण, गुणस्थान, योग और उपयोग नहीं होते। अजीव आठ कर्मों का अकर्त्ता है और पुण्य पाप का अभोक्ता है। अजीव भूतकाल में अजीव था, वर्तमान में अजीव है और भविष्यत्काल में अजीव रहेगा। अजीव कभी जीव नहीं होता।

3. **पुण्य तत्त्व-** जो आत्मा को पवित्र करे, जिसके कारण साता रूप सुख की प्राप्ति हो, उसे पुण्य तत्त्व कहते हैं। पुण्य शुभ प्रकृति रूप है और शुभ योगों से बंधता है। पुण्य का फल मीठा है और सुखपूर्वक भोगा जाता है। पुण्य का बाँधना कठिन है और भोगना सहज है। पुण्य आत्मा को धर्म करणी के अनुकूल सहायक सामग्री प्रदान करता है। पुण्य सोने के आभूषणों के समान है।

4. **पाप तत्त्व-** जो आत्मा को नीचे गिरावे, आत्मा को मलिन करे, जिसके कारण दुःख की प्राप्ति हो, उसे पाप तत्त्व कहते हैं। पाप अशुभ प्रकृति रूप है और अशुभ योगों से बँधता है। पाप का फल कड़वा है, दुःख पूर्वक भोगा जाता है। पाप बाँधते समय अच्छा लगता है, किन्तु भोगते समय बहुत बुरा लगता है। पाप आत्मा को दुःखी बनाता है। पाप बेड़ी के समान बन्धनकारक है।

5. **आश्रव तत्त्व-** जिस क्रिया द्वारा आत्मा में शुभ अशुभ कर्म आते हैं, उसे आश्रव तत्त्व कहते हैं। जीव रूपी तालाब में कर्म रूपी पानी आश्रव रूपी नालों द्वारा आता है।

6. **संवर तत्त्व-** जिस क्रिया द्वारा आत्मा में शुभ-अशुभ कर्मों का आना रुकता है, उसे संवर तत्त्व कहते हैं। जीव रूपी तालाब में आश्रव रूप नालों द्वारा आता हुआ कर्म रूपी पानी सम्यक्त्व-व्रत-प्रत्याख्यानादि रूप पाल द्वारा रुकता है।

7. **निर्जरा तत्त्व-** क्षीर नीर की तरह आत्मा के साथ एक रूप हुए कर्म पुद्गल जिस क्रिया द्वारा आंशिक रूप से क्षय किये जाये यानी आत्मा से अलग किये जाये, उसे निर्जरा तत्त्व कहते हैं। जीव रूपी कपड़ा कर्म रूपी मैल से मलिन है, उसे ज्ञान रूपी जल, शील-संयम रूपी साबुन एवं तप रूपी अग्नि द्वारा निर्मल करना निर्जरा है।

8. **बंध तत्त्व-** आश्रव द्वारा आये हुए कर्म पुद्गलों का आत्मा से पूर्वबद्ध कर्मों के साथ दूध-मिश्री की तरह अथवा लोहपिण्ड- अग्नि की तरह एक रूप हो जाना बंध तत्त्व कहलाता है। योग और कषाय, कर्म बंध के कारण हैं।

9. **मोक्ष तत्त्व-** निर्जरा द्वारा आठ कर्मों का क्षय हो जाने पर यानी आत्मा से सम्पूर्ण कर्मों के अलग हो जाने पर आत्मा का सदा के लिये अपने स्वरूप में स्थित हो जाना मोक्ष तत्त्व कहलाता है।

इन नौ तत्त्वों में से दो तत्त्व- जीव, अजीव जानने योग्य हैं, तीन तत्त्व- पाप, आश्रव और बंध छोड़ने योग्य हैं और चार तत्त्व- पुण्य, संवर, निर्जरा और मोक्ष ग्रहण करने योग्य हैं।

नव तत्त्वों में पुण्य, पाप, आश्रव और बंध ये चार रूपी हैं। जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये चार अरूपी हैं। अजीव पुद्गलास्तिकाय की अपेक्षा रूपी है और धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल की अपेक्षा अरूपी है।

नव तत्त्वों में एक जीव, एक अजीव और सात तत्त्व जीव अजीव की पर्याय रूप हैं अर्थात् जीव अजीव के कारण से ये सातों तत्त्व होते हैं।

जीव तत्त्व

निश्चय में जीव का भेद एक ही है। व्यवहार में जीवों के दो से चौदह तक तथा 563 भेद होते हैं।

जीव का एक भेद- उपयोग लक्षण। जीव के दो भेद- त्रस और स्थावर। जीव के तीन भेद- स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद। जीव के चार भेद- नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देवता। जीव के पाँच भेद- एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय। जीव के छः भेद- पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय (तेजस्काय), वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। जीव के सात भेद- नरक, देव, देवी, तिर्यंच, तिर्यंचिणी मनुष्य और मनुष्यिणी। जीव के आठ भेद- चार गति- नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव का पर्याप्त और अपर्याप्त। जीव के नौ भेद- पाँच स्थावर- पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और चार त्रस- बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। जीव के दस भेद- एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, इन पाँच के पर्याप्त और अपर्याप्त। जीव के ग्यारह भेद- एकेन्द्रिय आदि पाँच के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दस और ग्यारहवाँ अणिंदिया (अनिन्द्रिय)। जीव के बारह भेद- पृथ्वीकाय आदि छह का पर्याप्त और अपर्याप्त। जीव के तेरह भेद- छह काय का पर्याप्त और अपर्याप्त ये बारह और तेरहवाँ अकाइया (सिद्ध भगवान्)। जीव के चौदह भेद- सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय- इन सात के पर्याप्त और अपर्याप्त।

जीव के 563 भेद- चौदह नारकी, अड़तालीस तिर्यंच, तीन सौ तीन मनुष्य और एक सौ अट्ठाणु देवता।

नारकी के चौदह भेद

सात नारकी के नाम- घम्मा, वंसा, सीला, अंजणा, रिट्ठा, मघा और माघवई। सात नारकी के गोत्र-रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और तमतमाप्रभा (तमस्तमा प्रभा)।

इन सात नारकी के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से चौदह भेद होते हैं।

तिर्यंच के अड़तालीस भेद

पृथ्वीकाय के दो भेद– सूक्ष्म और बादर, इन दोनों के दो-दो भेद- पर्याप्त और अपर्याप्त। इस तरह पृथ्वीकाय के चार भेद हुए।

बादर पृथ्वीकाय के मुरड़, मिट्टी, खड़िया मिट्टी (हिंगलू), हरताल, हड़मची, भोडल, गेरू, सोना, चाँदी, लोहा, ताँबा, मणि, रत्न आदि अनेक भेद हैं। पृथ्वीकाय का वर्ण पीला, स्वभाव कठोर, संठाण मसूर की दाल के आकार के समान है। एक छोटे से कंकर में असंख्याता पृथ्वीकाय के जीव होते हैं। एक पर्याप्त के नेश्राय में असंख्याता अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

'सूक्ष्म' नाम कर्म के उदय से पृथ्वीकाय के जिन जीवों का शरीर अत्यन्त सूक्ष्म हों, वे सूक्ष्म पृथ्वीकाय कहलाते हैं। असंख्यात सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर इकट्ठे हो जाने पर भी ये छद्मस्थ को दिखाई नहीं देते। परमावधिज्ञानी और केवल ज्ञानी ही इन जीवों को देख सकते हैं। इन सूक्ष्म पृथ्वीकाय के जीवों का छेदन-भेदन नहीं होता। अग्नि इन्हें जला नहीं सकती। इन जीवों को किसी से उपघात नहीं होता और न ये किसी जीव को उपघात पहुँचाते हैं। सारे लोकाकाश में ये जीव काजल की कुप्पी के समान ठूँस-ठूँस कर भरे हुए हैं। इसी तरह सूक्ष्म अप्काय, सूक्ष्म तेउकाय, सूक्ष्म वायुकाय और सूक्ष्म वनस्पतिकाय का स्वरूप जानना।

'बादर' नाम कर्म के उदय से पृथ्वीकाय के जिन जीवों को स्थूल शरीर प्राप्त होता है, वे बादर पृथ्वीकाय कहलाते हैं। असंख्य पृथ्वीकायिक जीवों के शरीर इकट्ठे होने पर ये दिखाई देते हैं। इनका छेदन-भेदन आदि होता है। ये लोक के एक देश में रहे हुए हैं। इसी तरह बादर अप्काय, बादर तेउकाय, बादर वायुकाय और बादर वनस्पतिकाय का स्वरूप जानना। बादर वायुकाय के असंख्य जीवों के शरीर इकट्ठे होने पर उनका स्पर्श द्वारा ज्ञान होता है। वनस्पतिकाय के एक तथा अनेक जीवों का शरीर दिखाई देता है।

अप्काय के दो भेद– सूक्ष्म और बादर। पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से दोनों के दो-दो भेद होते हैं। इस तरह अप्काय के चार भेद हुए।

बादर अप्काय के ओस,, कुहरा, बर्फ, ओला, वर्षा का पानी, कुवा, बावड़ी, तालाब का पानी आदि अनेक भेद हैं। अप्काय का वर्ण लाल, स्वभाव ढीला और संठाण पानी के बुलबुले (बुद-बुद) के आकार के समान है। एक पानी की बूँद में असंख्याता जीव होते हैं। एक पर्याप्त की नेश्राय में असंख्याता अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

तेऊकाय के दो भेद– सूक्ष्म और बादर। दोनों के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से दो-दो भेद होते हैं। इस तरह तेऊकाय के चार भेद हुए।

बादर तेऊकाय के इंगाल (अंगारा), ज्वाला, भोभर, उल्कापात, विद्युत्, वड़वाग्नि, काष्ट की अग्नि, पाषाण की अग्नि आदि अनेक भेद हैं। तेऊकाय का वर्ण सफेद, स्वभाव उष्ण और संठाण सूई की भारी के आकार के समान है। एक चिनगारी में तेऊकाय के असंख्याता जीव होते हैं। एक पर्याप्त की नेश्राय में असंख्याता अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं।

वायुकाय के दो भेद– सूक्ष्म और बादर। दोनों के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से दो-दो भेद होते हैं। इस तरह वायुकाय के चार भेद होते हैं।

बादर वायुकाय के उक्कलियावाय, मण्डलियावाय, घनवाय, गुंजावाय, संवर्तक वाय, शुद्धवाय आदि अनेक भेद हैं। वायुकाय का वर्ण नीला है, स्वभाव चलना है और संठाण पताका के आकार के समान है। एक फूँक प्रमाण सचित्त वायु में वायुकाय के असंख्याता जीव होते हैं। एक पर्याप्त की नेश्राय में असंख्याता अपर्याप्त उत्पन्न होते हैं। लोकाकाश के छिद्रों में, यानी जहाँ भी लोकाकाश खाली है, वहाँ वायुकाय के जीव रहते हैं।

वनस्पतिकाय के छह भेद– मुख्य भेद २-सूक्ष्म और बादर। बादर वनस्पतिकाय के दो भेद- प्रत्येक और साधारण। इन तीनों सूक्ष्म, प्रत्येक और साधारण के पर्याप्त अपर्याप्त के दो-दो भेद होते हैं। इस प्रकार वनस्पतिकाय के छः भेद हुए।

प्रत्येक वनस्पति के बारह भेद– रूक्खा (वृक्ष), गुच्छा, गुम्मा (गुल्म), लया, वल्ली, पव्वगा, तणा, वलया, हरिय (हरित), ओसहि (औषधि), जलरूहा, कुहणा।

साधारण वनस्पति– जिन जीवों के साधारण शरीर होता है, यानी एक औदारिक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं, उसे साधारण वनस्पति कहते हैं। साधारण वनस्पति के अनेक प्रकार हैं जैसे- प्याज, लहसुन, आलू, रतालू, पिंडालू, गाजर, मूला, शलगम, हल्दी, अदरख आदि। वनस्पतिकाय का वर्ण काला होता है। स्वभाव और संठाण नाना प्रकार के होते हैं।

बेइन्द्रिय के दो भेद– पर्याप्त और अपर्याप्त। बेइन्द्रिय (द्वीन्द्रिय)- जिसके स्पर्शन इन्द्रिय और रसना इन्द्रिय, ये दो इन्द्रिय हों, उसे बेइन्द्रिय कहते हैं। बेइन्द्रिय के दो भेद- पर्याप्त और अपर्याप्त। शंख, कोडी, शीप, जोक (जलोक), लट, कृमि, कोड़ा, खपरीया, अलसिया, चूरणिया, नाहरू (वाला) आदि बेइन्द्रिय के अनेक प्रकार हैं।

तेइन्द्रिय के दो भेद– पर्याप्त और अपर्याप्त। तेइन्द्रिय (त्रीन्द्रिय)- जिसके स्पर्शन, रसना और घ्राण- ये तीन इन्द्रिय हों, उसे तेइन्द्रिय कहते हैं। तेइन्द्रिय के दो भेद- पर्याप्त और अपर्याप्त। जूँ, लीख, कीड़ी, मकोड़ी, कुंथुवा, कानसलावा, खटमल, धनेरिया, उदई आदि तेइन्द्रिय जीवों के अनेक प्रकार हैं।

चौरेन्द्रिय के दो भेद– पर्याप्त और अपर्याप्त। चौरेन्द्रिय (चतुरिन्द्रिय)- जिसके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु- ये चार इन्द्रिय हों, उसे चौरेन्द्रिय कहते हैं। चौरेन्द्रिय के दो भेद- पर्याप्त और अपर्याप्त। मक्खी, मच्छर, टीड, पतंगिया, करोड़िया, कसारी, भँवरा, बिच्छू आदि चौरेन्द्रिय जीव के अनेक प्रकार हैं।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद– जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प। इनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और (श्रोत्र) कान- ये पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं।

जलचर– पानी में चलने वाले जलचर कहलाते हैं। जलचर के पाँच भेद हैं- मच्छ, कच्छप, ग्राह, मगर और सुंसुमार। इन पाँचों भेदों में सभी जलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों का समावेश हो जाता है।

स्थलचर– जमीन पर चलने वाले स्थलचर कहलाते हैं। स्थलचर के चार भेद हैं- एगखुरा, बिखुरा, गंडीपया, सण्णपया (सनखपद)। **एगखुरा–** एक खुर वाले, जैसे- घोड़ा, गधा आदि। **बिखुरा–** दो खुर वाले, जैसे- गाय, भैंस, बकरी, ऊँट आदि। **गंडीपया–** सुनार की एरण के समान गोल पैर वाले, जैसे- हाथी, गैंडा आदि। **सण्णपया–** नख सहित पंजे वाले, जैसे- सिंह, चीता, बिल्ली, कुत्ता आदि।

खेचर– आकाश में उड़ने वाले पक्षी। इनके चार भेद- चर्मपक्षी, रोमपक्षी, समुग्ग पक्षी, वितत पक्षी। **चर्म पक्षी–** चर्म के पंख वाले। जैसे- चिमगादड़, भारंड पक्षी, समुद्र-वायस आदि। **रोमपक्षी–** रूँओं के पंखवाले। जैसे- चिड़ियाँ, कबूतर, मोर, तोता, मैना, हंस, कौवा आदि। **समुग्ग पक्षी–** जिनके पंख हमेशा डिब्बे की तरह बंद रहते हैं। **वितत पक्षी–** जिनके पंख हमेशा खुले-फैले हुए रहते हैं। समुग्ग पक्षी और वितत पक्षी ढ़ाई द्वीप में नहीं होते। ये ढ़ाई द्वीप के बाहर होते हैं।

उरपरिसर्प– छाती से चलने वाली सर्प जाति। उरपरिसर्प चार प्रकार के होते हैं- अहि, अजगर, असालिया, महोरग। **अहि** सर्प के दो भेद- फण करने वाले और फण नहीं करने वाले। **अजगर–** जो मनुष्य आदि को निगल जाता है। **असालिया** - यह चक्रवर्ती आदि की राजधानी अथवा नगर आदि की खाल (गटर) के नीचे पैदा होता है। अन्तर्मुहूर्त में बारह योजन लम्बा हो जाता है। इसे भस्म दाह होता है। यह बारह योजन की मिट्टी खा जाता है। चक्रवर्ती आदि की सेना तथा गाँव नगर आदि का नाश कर देता है। यह असंज्ञी होता है। इसकी आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है। **महोरग–** महोरग जाति का सर्प ढ़ाई द्वीप के बाहर होता है। यह अंगुल- प्रत्येक अंगुल से लेकर एक हजार योजन प्रमाण होता है। यह सर्प जल और स्थल दोनों जगह रहता है।

भुजपरिसर्प– भुजा से चलने वाले। जैसे- कोल, नेवला, चूहा, छिपकली, गिलहरी, गोह आदि।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद- जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प, इनके सन्नी और असन्नी के भेद से दस भेद होते हैं। इन दस के पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से बीस भेद होते हैं। एकेन्द्रिय के 22, तीन विकलेन्द्रिय के 6, तिर्यंच पंचेन्द्रिय के 20, कुल मिलाकर तिर्यंच के अड़तालीस भेद हुए।

मनुष्य के 303 भेद

मनुष्य के दो भेद– गर्भज और सम्मूर्छिम। गर्भज के तीन भेद- कर्मभूमि, अकर्मभूमि और अन्तर् द्वीपा।

कर्मभूमि– जहाँ मनुष्य असि, मषी, कृषि द्वारा आजीविका करते हैं। जहाँ राजा-रानी हैं, राजा-रानी की आज्ञा चलती है। जहाँ लेना लेते हैं, देना देते हैं, विवाह-शादी होती हैं। जहाँ साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थ हैं। जहाँ मनुष्य मोक्ष के लिये क्रिया करते हैं। इस प्रकार की कर्म-प्रधान भूमि कर्म भूमि कहलाती है। कर्मभूमि में तीर्थंकर, विहरमान, गणधर, आचार्य, उपाध्याय, साधु, साध्वी, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदि होते हैं। कर्मभूमि के पन्द्रह क्षेत्र हैं- पाँच भरत, पाँच ऐरवत, पाँच महाविदेह। इन पाँच-पाँच भेदों में से एक-एक भेद जम्बूद्वीप में, दो-दो धातकी खण्ड में तथा दो-दो अर्ध पुष्करद्वीप में है।

अकर्मभूमि– जहाँ असि, मषी, कृषि, वाणिज्य द्वारा आजीविका नहीं करते हैं। जहाँ खेत, सेत, अभयखेत नहीं हैं। जहाँ न राजा-रानी हैं और न उनकी आज्ञा ही चलती है। जहाँ लेने-देने का व्यवहार नहीं है। जहाँ विवाह-शादी नहीं होती। जहाँ साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चार तीर्थ नहीं हैं। जहाँ तीर्थंकर, विहरमान, गणधर आदि नहीं हैं तथा चक्रवर्ती बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव आदि भी नहीं हैं। जहाँ दस जाति के कल्पवृक्ष मनुष्यों की आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं, उसे अकर्मभूमि कहते हैं। अकर्मभूमि के तीस क्षेत्र हैं- 5 देवकुरू, 5 उत्तरकुरू, 5 हरिवास, 5 रम्यक्वास, 5 हेमवय, 5 ऐरण्यवय। इन पाँच-पाँच भेदों में से

एक-एक जम्बूद्वीप में, दो-दो भेद धातकी खण्ड में तथा दो-दो भेद अर्ध पुष्करद्वीप में है। इन तीस क्षेत्रों में अकर्मभूमि के मनुष्य रहते हैं।

छप्पन अन्तर्द्वीपा- जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला चूल हेमवंत पर्वत है और जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला शिखरी पर्वत है। इन पर्वतों में से प्रत्येक पर्वत के पूर्व पश्चिम की ओर लवण समुद्र में चारों विदिशाओं में सात-सात अन्तर्द्वीपा हैं जो दाढ़ाओं के आकार वाले हैं। इस प्रकार एक पर्वत के दोनों ओर अट्ठाईस अन्तर्द्वीपा हैं और दोनों पर्वतों के मिलाकर छप्पन अन्तर्द्वीपा हैं।

इन अन्तर्द्वीपों में युगलिक मनुष्य रहते हैं। दस जाति के कल्पवृक्षों से इनकी आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं। ये एकान्त मिथ्यादृष्टि होते हैं। फिर भी अल्प कषायी होने से मरकर देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

पन्द्रह कर्मभूमि, तीस अकर्मभूमि, छप्पन अन्तर्द्वीपा- ये मनुष्य के 101 भेद हुए। पर्याप्त अपर्याप्त के भेद से 202 भेद हुए।

पन्द्रह कर्मभूमि, तीस अकर्मभूमि और छप्पन अन्तर्द्वीपा- इन 101 गर्भज मनुष्यों के चौदह अशुचि स्थानों में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम मनुष्य भी 101 प्रकार के होते हैं। चौदह अशुचि स्थान ये हैं- (1) उच्चारेसु वा- बड़ीनीत (विष्ठा-मल) में। (2) पासवणेसु वा-लघुनीत (पिशाब) में। (3) खेलेसु वा-कफ-बलगम में। (4) सिंघाणेसु वा-नाक के मेल (सेडे) में। (5) वंतेसु वा-वमन में। (6) पित्तेसु वा-पित्त में। (7) पूएसु वा-राध में। (8) सोणियेसु वा-रूधिर में। (9) सुक्केसु वा-शुक्र-वीर्य में। (10) सुक्क पुग्गल परिसाडेसु वा-सूखे हुए वीर्य पुद्गलों के वापिस गीले होने पर। (11) विगय जीव कलेवरेसु वा-मनुष्य के मृत कलेवर में। (12) इत्थी पुरिस संजोएसु वा-स्त्री पुरुष के संयोग में। (13) णगर णिद्धमणेसु वा-नगर की खाल- नाली गटर में। (14) सव्वेसु असुइट्ठाणेसु वा- सभी अशुचि स्थानों में- यानी उपर्युक्त तेरह स्थानों में से दो तीन चार आदि स्थान इकट्ठे होने पर उनमें जो सम्मूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं।

ये सम्मूर्छिम मनुष्य उपर्युक्त चौदह स्थानों में अन्तर्मुहूर्त में उत्पन्न होते हैं। इनकी अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग परिमाण होती है। आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है। ये असंज्ञी मिथ्यादृष्टि होते हैं एवं अपर्याप्त अवस्था में ही मर जाते हैं।

उपर्युक्त 202 गर्भज मनुष्य और 101 सम्मूर्च्छिम मनुष्य के मिलाकर मनुष्य के 303 भेद हुए।

देवता के 198 भेद

दस भवनपति, पन्द्रह परमाधामी (परमाधार्मिक), सोलह वाणव्यंतर, दस त्रिजृम्भक, दस ज्योतिषी, तीन किल्विषी, बारह देवलोक, नव लोकांतिक, नव ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान- ये देवता के 99 भेद हैं, इनके नाम इस प्रकार हैं-

दस भवनपति- असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, पवनकुमार, स्तनितकुमार।

पन्द्रह परमाधामी- अम्ब, अम्बरीष, श्याम, शबल, रौद्र, महारौद्र, काल, महाकाल, असिपत्र, धनु, कुम्भ, वालुय, वैतरणी, खरस्वर, महाघोष।

सोलह वाणव्यन्तर- पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गंधर्व, आणपन्ने, पाणपन्ने, इसिवाई, भूयवाई, कन्दे, महाकन्दे, कुहण्डे और पयंगदेवे।

दस त्रिजृम्भक– अन्न जृम्भक, पान जृम्भक, लयन जृम्भक, शयन जृम्भक, वस्त्र जृम्भक, फल जृम्भक, पुष्प जृम्भक, फल-पुष्प जृम्भक, विद्या जृम्भक और अग्नि जृम्भक।

दस ज्योतिषी– चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा, ये पाँच ज्योतिषी हैं। ये पाँच चर और पाँच अचर (स्थिर)- इस प्रकार ज्योतिषी के दस भेद होते हैं। चर ज्योतिषी ढाई द्वीप के अन्दर हैं और पूर्ण ज्योति तथा कांति वाले हैं। अचर ज्योतिषी ढाई द्वीप के बाहर है, जिनकी ज्योति और कांति चर की अपेक्षा आधी है।

तीन किल्विषी– तीन पलिया (तीन पल्योपम की स्थिति वाले), तीन सागरिया (तीन सागरोपम की स्थिति वाले), और तेरह सागरिया (तेरह सागरोपम की स्थिति वाले), तीन पलिया किल्विषी देव पहले दूसरे देवलोक के नीचे रहते हैं। तीन सागरिया किल्विषी देव, तीसरे चौथे देवलोक के नीचे रहते हैं। तेरह सागरिया किल्विषी देव पाँचवे देवलोक के ऊपर और छठे देवलोक के नीचे रहते हैं।

बारह देवलोक– सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत देवलोक।

नव लोकांतिक– सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरूण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, आग्नेय और अरिष्ट।

नव ग्रैवेयक– भद्र, सुभद्र, सुजात, सुमनस, सुदर्शन, प्रियदर्शन, आमोह, सुप्रतिबद्ध और यशोधर।

पाँच अनुत्तर विमान– विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध।

देवता के उपर्युक्त 99 भेद हुए। ये 99 पर्याप्त और 99 अपर्याप्त, इस प्रकार देवता के कुल 198 भेद हुए।

अजीव तत्व

अजीव के जघन्य चौदह भेद, उत्कृष्ट 560 भेद होते हैं। अजीव के चौदह भेद हैं- धर्मास्तिकाय के तीन भेद- स्कन्ध, देश, प्रदेश। अधर्मास्तिकाय के तीन भेद- स्कन्ध, देश, प्रदेश। आकाशास्तिकाय के तीन भेद- स्कन्ध, देश, प्रदेश। दसवाँ काल। पुद्गलास्तिकाय के चार भेद- स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु पुद्गल। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल के दस भेद अरूपी हैं। पुद्गलास्तिकाय के चारों भेद रूपी हैं।

अजीव के 560 भेद– अरूपी अजीव के 30 भेद और रूपी अजीव के 530 भेद।

अरूपी अजीव के 30 भेद– धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय के तीन-तीन भेद हैं- स्कन्ध, देश और प्रदेश। दसवाँ काल। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल- ये चारों द्रव्य- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण- इन पाँच-पाँच बोलें से जाने जाते हैं। अतः चारों के बीस भेद हुए। उपर्युक्त दस और ये बीस मिलाकर अरूपी अजीव के तीस भेद होते हैं।

रूपी अजीव के 530 भेद इस प्रकार हैं– वर्ण के पाँच भेद- काला, नीला, लाल, पीला और सफेद। गन्ध के दो भेद- सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध। रस के पाँच भेद- तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा। स्पर्श के आठ भेद- खुरदरा (कर्कश), सुहाला (मृदु) हल्का, भारी, शीत, उष्ण, लूखा (रूक्ष) और चौपड़िया (स्निग्ध)। संस्थान के पाँच भेद- परिमण्डल, वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और आयत।

वर्ण के 100 भेद– काला का किया भाजन, चार का किया प्रतिपक्ष- बोल पावे बीस- दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श और पाँच संस्थान। इसी प्रकार नीला, लाल, पीला, सफेद प्रत्येक में 20-20 बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार वर्ण के 100 भेद हुए।

गन्ध के 46 भेद– सुरभिगन्ध का किया भाजन और दुरभिगन्ध का किया प्रतिपक्ष। बोल पावे 23- पाँच वर्ण, पाँच रस, आठ स्पर्श और पाँच संस्थान। इसी तरह दुरभिगन्ध में भी 23 बोल पाते हैं। इस प्रकार गन्ध के 46 भेद हुए।

रस के 100 भेद– तीखा का किया भाजन, चार का किया प्रतिपक्ष, बोल पावे बीस- पाँच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श, पाँच संस्थान। इसी तरह कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा प्रत्येक में बीस-बीस बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार रस के 100 भेद हुए।

स्पर्श के 184 भेद– खुरदरा का किया भाजन, सुहाला का किया प्रतिपक्ष, बोल पावे तेईस- पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, 6 स्पर्श (खुरदरा और सुहाला के सिवाय) और पाँच संस्थान। इसी तरह सुहाला में भी तेईस बोल पाये जाते हैं। दोनों के 46 भेद होते हैं। इसी तरह हल्का और भारी के 46 भेद, शीत और उष्ण के 46 भेद और लुखा और चौपड़िया के 46 भेद होते हैं। इस प्रकार आठ स्पर्श के 184 भेद हुए।

संस्थान के 100 भेद– परिमण्डल का किया भाजन, चार का किया प्रतिपक्ष- बोल पावे बीस- पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस और आठ स्पर्श। इसी प्रकार वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण और आयत, प्रत्येक में बीस-बीस बोल पाये जाते हैं। इस प्रकार संस्थान के 100 भेद हुए।

इस प्रकार रूपी अजीव के 100+46+100+184+ 100= 530 भेद हुए। अरूपी अजीव के 30 और रूपी अजीव के 530 कुल मिलाकर अजीव के 560 भेद हुए।

पुण्य तत्त्व

पुण्य नौ प्रकार से बन्धता है और बयालीस प्रकार से भोगा जाता है।

(1) अन्न पुण्य- अन्न देने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (2) पान पुण्य- पानी पिलाने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (3) लयन पुण्य- जगह-मकान देने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (4) शयन पुण्य- शय्या-पाट-पाटला आदि देने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (5) वस्त्र पुण्य- कपड़ा देने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (6) मन पुण्य- मन का शुभ योग प्रवर्ताने से- शुभ चिन्तन करने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (7) वचन पुण्य- वचन का शुभयोग प्रवर्ताने से- शुभ, हितकारी, मधुर वचन बोलने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (8) काय पुण्य- शरीर द्वारा दूसरों की सहायता करने, सुख उपजाने से पुण्य प्रकृति बन्धती है। (9) नमस्कार पुण्य- गुणवानों को नमस्कार करने से, उनका विनय करने से पुण्य प्रकृति बन्धती है।

पुण्य भोगने की 42 प्रकृतियाँ हैं। ये चार अघाती कर्मों के उदय होने से भोगी जाती हैं। वेदनीय कर्म के उदय से एक- साता वेदनीय। आयु कर्म के उदय से तीन- देवायु, मनुष्यायु तिर्यंचायु। गोत्र कर्म के उदय से एक- उच्च गोत्र। नाम कर्म के उदय से 37- (1) मनुष्य गति, (2) देव गति, (3) पंचेन्द्रिय जाति (4-8) पाँच शरीर- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस्, कार्मण (9-11) तीन अंगोपांग- औदारिक अंगोपांग, वैक्रिय अंगोपांग, आहारक अंगोपांग (12) वज्र ऋषभ नाराच संहनन (13) समचतुरस्र संस्थान (14) शुभ वर्ण (15) शुभ गन्ध (16) शुभ रस (17) शुभ स्पर्श (18-19) दो आनुपूर्वी- देवानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी (20) शुभ विहायोगति (21-30) त्रस दशक- त्रस नाम, बादर नाम, पर्याप्त नाम, प्रत्येक नाम, स्थिर नाम, शुभ नाम, सुभग नाम, सुस्वर नाम, आदेय नाम, यशः कीर्ति नाम। (31) अगुरुलघु नाम (32) पराघात नाम (33) आतप नाम (34) उद्योत नाम (35) श्वासोच्छ्वास नाम (36) निर्माण नाम (37) तीर्थंकर नाम। इस प्रकार 1+3+1+37= 42 पुण्य प्रकृतियाँ हुईं।

पाप तत्व

पाप अठारह प्रकार से बंधता है और 82 प्रकार से भोगा जाता है। पाप बांधने के अठारह प्रकार- (1) प्राणातिपात- जीवों की हिंसा करना- जीवों को दुःख पहुँचाना (2) मृषावाद- असत्य- झूठ बोलना (3) अदत्तादान- चोरी करना, (4) मैथुन- कुशील सेवन करना- ब्रह्मचर्य का पालन न करना, (5) परिग्रह- धन-धान्य आदि का संग्रह करना और उसमें ममत्व- मूर्च्छा (आसक्ति) रखना (6) क्रोध- गुस्सा करना- शान्ति न रखना (7) मान- अहंकार करना- चित्त की कोमलता और विनय का अभाव (8) माया- कपट करना- ऋजुता- सरलता न रखना (9) लोभ- तृष्णा- लालच- धन्य-धान्यादि में गृद्धि, प्राप्त वस्तु में आसक्ति भाव रखना (10) राग-मनोज्ञ वस्तु में स्नेह रखना- माया और लोभ से राग उत्पन्न होता है (11) द्वेष करना- अमनोज्ञ वस्तु आदि में द्वेष रखना। क्रोध और मान से द्वेष उत्पन्न होता है (12) कलह-क्लेश-झगड़ा करना (13) अभ्याख्यान- किसी पर झूठा दोष लगाना, कलंक देना (14) पैशुन्य-चुगली करना- किसी के दोष प्रकट करना। (15) परपरिवाद- दूसरे की निन्दा बुराई करना (16) रति-अरति- पाप कर्मों में चित्त लगाना- रुचि रखना और संयम-तप आदि धर्म कार्यों में अरुचि रखना अथवा इन्द्रियों के मनोज्ञ विषय पाकर प्रसन्न होना और अमनोज्ञ विषय पाकर खिन्न होना (17) माया मृषावाद-कपट सहित झूठ बोलना (18) मिथ्या दर्शनशल्य-तत्त्व को अतत्त्व मानना और अतत्त्व को तत्त्व मानना। कुदेव, कुगुरू और कुधर्म पर श्रद्धा रखना- सुदेव, सुगुरू, सुधर्म की श्रद्धा न रखना यानी श्रद्धा का विपरीत होना।

पाप कर्म भोगने की 82 प्रकृतियाँ हैं, जो आठ कर्मों के उदय में आने से भोगी जाती हैं। 82 प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं- (1-5) ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से पाँच प्रकृतियाँ- मतिज्ञानावरणीय, श्रुत ज्ञानावरणीय, अवधि ज्ञानावरणीय, मनःपर्याय ज्ञानावरणीय, केवल ज्ञानावरणीय (6-14) दर्शनावरणीय कर्म के उदय से नौ प्रकृतियाँ- चक्षु दर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधिदर्शनावरणीय, केवल दर्शनावरणीय, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला- प्रचला, स्त्यानर्द्धि। (15) वेदनीय कर्म के उदय से एक प्रकृति- असाता वेदनीय (16-41) मोहनीय कर्म के उदय से 26 प्रकृतियाँ- मिथ्यात्व मोहनीय, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ। अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ। प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ। हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद (42) आयुकर्म कर्म के उदय से एक प्रकृति- नरकायु (43-76) नाम कर्म के उदय से 34 प्रकृतियाँ- दो गति- नरक गति, तिर्यंच गति, चार जाति- एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पाँच संहनन- ऋषभ नाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका, सेवार्त पाँच संठाण- न्यग्रोध परिमण्डल संठाण, सादि संठाण, वामन संठाण, कुब्जक संठाण, हुण्डक संठाण, अशुभ वर्ण, अशुभ गन्ध, अशुभ रस, अशुभ स्पर्श, दो आनुपूर्वी- नरकानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, अशुभ विहायोगति, उपघात नाम, स्थावरदशक- स्थावर नाम, सूक्ष्म नाम, अपर्याप्त नाम, साधारण नाम, अस्थिर नाम, अशुभ नाम, दुर्भग नाम, दुःस्वर नाम, अनादेय नाम, अयशः कीर्ति नाम, (77) गोत्र कर्म के उदय से एक प्रकृति- नीच गोत्र, (78-82) अन्तराय कर्म के उदय से पाँच प्रकृतियाँ- दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय। इस तरह पाप कर्म भोगने की 5+9+1+26+ 1+34+1+5= 82 प्रकृतियाँ हुईं।

आश्रव तत्त्व

आश्रव के जघन्य पाँच भेद, मध्यम 20 भेद और उत्कृष्ट 42 भेद हैं।

आश्रव के 5 भेद- मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, और अशुभ योग।

आश्रव के 20 भेद- (1) मिथ्यात्व- मिथ्यात्व सेवे, विपरीत श्रद्धा रखे तो आश्रव (2) अव्रत- व्रत प्रत्याख्यान धारण नहीं करे तो आश्रव (3) प्रमाद- पाँच प्रमाद- मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा का सेवन करे तो आश्रव (4) कषाय- पचीस कषाय का सेवन करे तो आश्रव (5) अशुभयोग- मन, वचन, काया को अशुभ व्यापार में लगावे तो आश्रव (6) प्राणातिपात- जीव हिंसा करे तो आश्रव (7) मृषावाद- झूठ बोले तो आश्रव। (8) अदत्तादान- चोरी करे- स्वामी की आज्ञा बिना, उसकी वस्तु बिना दिये ग्रहण करे तो आश्रव (9) मैथुन- कुशील सेवन करे तो आश्रव (10) परिग्रह- धन-धान्यादि द्रव्य रखे, उनमें ममत्व- आसक्ति रखे तो आश्रव (11-15) श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय वश में न रखे तो आश्रव (16) मन वश में न रखे तो आश्रव (17) वचन वश में न रखे तो आश्रव (18) काया वश में न रखे तो आश्रव (19) भण्ड उपकरण अयतना से लेवे, अयतना से रखे तो आश्रव (20) सूई कुशाग्र मात्र अयतना से लेवे और अयतना से रखे तो आश्रव।

आश्रव के 42 भेद- (1-5) पाँच अव्रत- प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह का त्याग न करना (6-10) पाँच इन्द्रिय- श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय को वश में न रखना- इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों पर राग और अमनोज्ञ विषयों पर द्वेष रखना (11-14) चार कषाय- क्रोध, मान, माया, लोभ का सेवन करना (15-17) तीन योग- मन, वचन, काया को अशुभ व्यापार में लगाना (18-42) पच्चीस क्रियाओं का सेवना करना।

पच्चीस क्रियाएँ इस प्रकार हैं-

(1) काइया- शरीर के अशुभ योगों से लगने वाली क्रिया।
(2) अहिगरणिया-शस्त्र आदि से लगने वाली क्रिया।
(3) पाओसिया-द्वेष भाव रखने से लगने वाली क्रिया।
(4) परियावणिया- दुःख उपजाने से लगने वाली क्रिया।
(5) पाणाइवाइया- प्राणों का विनाश करने से लगने वाली क्रिया।
(6) आरम्भिया-छह काय के जीवों की विराधना से लगने वाली क्रिया।
(7) परिग्गहिया-धन-धान्यादि पर मूर्च्छा भाव रखने से लगने वाली क्रिया।
(8) मायावत्तिया- छल-कपट करने से लगने वाली क्रिया।
(9) अपच्चक्खाणकिरिया-व्रत-प्रत्याख्यान नहीं करने से लगने वाली क्रिया।
(10) मिच्छादंसणवत्तिया-मिथ्यादर्शन के कारण से लगने वाली क्रिया।
(11) दिट्ठिया-राग-द्वेष पूर्वक वस्तुओं को देखने से लगने वाली क्रिया।
(12) पुट्ठिया-राग-द्वेष पूर्वक वस्तुओं को स्पर्श करने से लगने वाली क्रिया।
(13) पाडुच्चिया-राग-द्वेषादि की उत्पत्ति होने से लगने वाली क्रिया।

(14) सामन्तोवणिवाइया-घी-तेल आदि के पात्र खुले रखने से लगने वाली क्रिया।
(15) साहत्थिया-अपने हाथों से जीवों को मारने अथवा ताड़ना करने से लगने वाली क्रिया।
(16) णेसत्थिया-किसी भी वस्तु आदि को फैंकने-छोड़ने से लगने वाली क्रिया।
(17) आणवणिया-वस्तु आदि की आज्ञा देने अथवा मंगाने से लगने वाली क्रिया।
(18) वेयारणिया-चीर-फाड़ आदि करने से लगने वाली क्रिया।
(19) अणाभोगवत्तिया-बिना उपयोग के लापरवाही से लगने वाली क्रिया।
(20) अणवकंखवत्तिया-हिंसादि के कार्य करने से लगने वाली क्रिया।
(21) पेज्जवत्तिया-राग उत्पन्न कराने से लगने वाली क्रिया।
(22) दोसवत्तिया-द्वेष उत्पन्न कराने से लगने वाली क्रिया।
(23) पओगकिरिया-प्रमादपूर्वक गमनागमन करने से लगने वाली क्रिया।
(24) समुदाणकिरिया-समुदाय के रूप में लगने वाली क्रिया।
(25) इरियावहियाकिरिया-सयोगी वीतरागियों को लगने वाली क्रिया।

इस प्रकार आश्रव के 5+5+4+3+25= 42 भेद हुए।

संवर तत्त्व

संवर तत्त्व के जघन्य 20 उत्कृष्ट 57 भेद होते हैं। संवर के बीस भेद इस प्रकार हैं- 1. सम्यक्त्व- शुद्ध यथार्थ श्रद्धा रखे तो संवर 2. व्रत प्रत्याख्यान अंगीकार करे तो संवर 3. अप्रमाद- पाँच प्रकार का प्रमाद सेवन न करे तो संवर 4. अकषाय- पच्चीस कषाय का त्याग करे तो संवर 5. शुभ योग- मन, वचन, काया के शुभ योग प्रवर्ताये तो संवर 6. अहिंसा- प्राणातिपात- जीव-हिंसा का त्याग करे तो संवर 7. सत्य-असत्यवचन का त्याग करे तो संवर 8. अदत्तादान- चोरी का त्याग करे तो संवर 9. मैथुन- कुशील का त्याग करे- ब्रह्मचर्य का पालन करे तो संवर 10. अपरिग्रह-परिग्रह का त्याग करे- धन धान्यादि में मूर्च्छा, ममत्व न रखे तो संवर, 11-15 पाँच इन्द्रिय- श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय को वश में रखे, मनोज्ञ शब्द- रूप, गन्ध, रस और स्पर्श में राग न रखे और अमनोज्ञ वस्तु पर द्वेष न करे तो संवर 16. मन वश में रखे तो संवर 17. वचन वश में रखे, सावद्य भाषा का त्याग करे, निरवद्य भाषा बोले, मौन रखे तो संवर 18. भण्ड उपकरण यतना से लेवे व यतना से रखे तो संवर 20. सूई कुशाग्र मात्र यतना से लेवे यतना से रखे तो संवर।

संवर के 57 भेद- 22 परीषह, 5 समिति, 3 गुप्ति, 10 यतिधर्म, 12 भावना और 5 चारित्र, ये संवर के 57 भेद हैं।

बाईस परीषह– 1. क्षुधा परीषह 2. पिपासा (तृषा) परीषह 3. शीत परीषह 4. उष्ण परीषह 5. दंशमशक परीषह 6. अचेल परीषह 7. अरति परीषह 8. स्त्री परीषह 9. चर्या परीषह 10. निषद्या परीषह 11. शय्या परीषह 12. आक्रोश परीषह 13. वध परीषह 14. याचना परीषह 15. अलाभ परीषह 16. रोग परीषह 17. तृणस्पर्श परीषह 18. जल्ल (मैल-पसीना आदि) परीषह 19. सत्कार पुरस्कार परीषह 20. प्रज्ञा परीषह 21. अज्ञान परीषह 22. दर्शन परीषह।

समिति के पाँच भेद– 1. ईर्या 2. समिति, भाषासमिति, 3. एषणा समिति, 4. आदान भण्ड मात्र निक्षेपणा समिति, 5. उच्चार प्रश्रवण खेल जल्ल-सिंघाण परिष्ठापनिका समिति।

गुप्ति के तीन भेद– मन गुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति।

दस यति धर्म– 1. खंती (क्षमा), 2. मुत्ति (सन्तोष), 3. अज्जवे (आर्जव- ऋजुता), 4. मद्दवे (मार्दव-मृदुता), 5. लाघवे (लघुता), 6. संजमे (संयम), 7. सच्चे (सत्य), 8. तवे (तप), 9. चियाए (त्याग), 10. बंभरचेरवासे (ब्रह्मचर्य), ये दस यति धर्म हैं।

बारह भावना–

क्र.सं.	**भावना का नाम**	**किसने भाई**
1.	अनित्य	भरत चक्रवर्ती ने
2.	अशरण	अनाथी मुनि ने
3.	संसार	शालिभद्रजी ने
4.	एकत्व	नमिराज ऋषि ने
5.	अन्यत्व	मृगापुत्रजी ने
6.	अशुचि	सनत्कुमार चक्रवर्ती ने
7.	आश्रव	समुद्रपाल मुनि ने
8.	संवर	हरिकेशी मुनि ने
9.	निर्जरा	अर्जुन अणगार ने
10.	लोक	शिवराजऋषि ने
11.	बोधि दुर्लभ	भ. ऋषभदेव के 98 पुत्रों ने
12.	धर्म भावना	धर्म रुचि अणगार ने

चारित्र पाँच प्रकार के बताये गये हैं– 1. सामायिक चारित्र 2. छेदोपस्थापनीय चारित्र 3. परिहार विशुद्धि चारित्र 4. सूक्ष्म सम्पराय चारित्र और 5. यथाख्यात चारित्र।,

निर्जरा तत्त्व

निर्जरा के बारह भेद होते हैं- छह बाह्य तप और छह आभ्यन्तर तप। 1. अनशन 2. ऊनोदरी 3. भिक्षाचर्या 4. रसपरित्याग 5. कायाक्लेश और 6. प्रतिसंलीनता- ये छह बाह्य तप हैं। 7. प्रायश्चित्त 8. विनय 9. वैयावृत्त्य 10. स्वाध्याय 11. ध्यान और 12. व्युत्सर्ग- ये छह आभ्यन्तर तप हैं।

1. अनशन- चारों प्रकार के आहार का त्याग करना। उसके दो भेद- 1. इत्वरिक (अल्पकाल का) और 2. यावत् कथिक- (जीवन-पर्यन्त)।

इत्वरिक अनशन के 14 भेद- 1. उपवास 2. बेला 3. तेला 4. चोला 5. पचोला 6. छह 7. सात 8. पन्द्रह दिन 9. एक माह 10. दो माह 11. तीन माह 12. चार माह 13. पाँच माह- और 14. छह माह।

यावत्कथिक के 3 भेद- पादपोपगमन, इंगितमरण और भक्त- प्रत्याख्यान। इन तीनों के दो-दो भेद- 1. निहारी (गाँव में होवे- अग्नि संस्कार सहित) 2. अनिहारी- (गाँव के बाहर होवे- अग्नि संस्कार रहित)।

2. ऊनोदरी- भूख से कम खाना। इसके 14 भेद। प्रमुख भेद दो- 1. द्रव्य और 2. भाव। द्रव्य ऊनोदरी के दो भेद- आहार और उपधि (उपकरण)।

आहार ऊनोदरी के 5 भेद- 1. अष्ट कवल प्रमाण आहार करना पौन ऊनोदरी, 2. बारह कवल प्रमाण आहार करना आधी झाझेरी (कुछ अधिक) ऊनोदरी, 3. सोलह कवल प्रमाण आहार करना आधी ऊनोदरी, 4. चौबीस कवल प्रमाण आहार करना पाव ऊनोदरी और 5. इकतीस कवल प्रमाण आहार करना किंचित् (जघन्य) ऊनोदरी समझना चाहिये। पुरुष के 32, स्त्री के 28, नपुंसक के 24 कवल (ग्रास) प्रमाण आहार बतलाया गया है। अपनी-अपनी भूख से जितना कम आहार करे वह आहार ऊनोदरी है। उपधि ऊनोदरी के 3 भेद- 1. एक वस्त्र, 2. एक पात्र और 3. एक जीर्ण उपधि।

भाव ऊनोदरी के 6 भेद- अल्प क्रोध, अल्प मान, अल्प माया, अल्प लोभ, अल्प शब्द और अल्प कलह।

3. भिक्षाचर्या- विविध प्रकार के अभिग्रह धारण कर भिक्षा का संकोच करते हुए विचरना भिक्षाचर्या तप है। अभिग्रह लेकर भिक्षा लेने से वृत्ति का संकोच होता है, इसलिए यह तप 'वृत्ति संक्षेप' नाम से भी कहा जाता है। भिक्षाचर्या के तीस भेद इस प्रकार हैं-

1. दव्वाभिग्गह चरए- द्रव्य-विशेष का अभिग्रह करना।
2. खेत्ताभिग्गह चरए- क्षेत्र- स्थान विशेष का अभिग्रह करना।
3. कालाभिग्गह चरए- समय विशेष का अभिग्रह करना।
4. भावाभिग्गह चरए-भाव विशेष का अभिग्रह करना।
5. उक्खित्त चरए-पकाने के पात्र से निकाले आहार को ग्रहण करना।
6. णिक्खित्त चरए- पकाने के पात्र से बाहर न निकाले हुए आहार को ग्रहण करना।
7. उक्खित्त णिक्खित्त चरए-पकाने के पात्र से निकाल कर उसी में अथवा दूसरे पात्र में निकाले आहार को ग्रहण करना।
8. णिक्खित्त उक्खित्त चरए-पकाने के पात्र में रखे हुए तथा उसमें से अपने लिए निकाले आहार को ग्रहण करना।

9. वट्टिज्जमाणचरए-परोसे जाते आहार को ग्रहण करना।
10. साहरिज्जमाण चरए-थाली आदि में फैलाए हुए आहार को ग्रहण करना।
11. उवणीअ चरए-किसी अन्य के लिए लाये हुए आहार को ग्रहण करना।
12. अवणीअ चरए-अन्यत्र रखे हुए आहार को ग्रहण करना।
13. उवणीअ अवणीअ चरए- किसी अन्य के लिए लाये हुए आहारादि में से दूसरी जगह रखे आहार को ग्रहण करना।
14. अवणीअ उवणीअ चरए-अन्यत्र रखे हुए आहार में से किसी अन्य के लिए लाये हुए आहार को ग्रहण करना।
15. संसट्ठचरए-भरे हाथों से दिये जाने वाले आहार को ग्रहण करना।
16. असंसट्ठ चरए-बिना भरे हुए हाथों से दिये जाने वाले आहार को ग्रहण करना।
17. तज्जाय संसट्ठचरए-देय पदार्थ अथवा वैसे ही अन्य पदार्थ से भरे हाथ आदि से दिये जाने वाले आहार को ग्रहण करना।
18. अण्णाय चरए-अज्ञात कुल से आहार आदि को ग्रहण करना।
19. मोण चरए-मौन रहकर आहार आदि ग्रहण करना।
20. दिट्ठलाभिए-सामने दिखाई देने वाले आहार को ग्रहण करना।
21. अदिट्ठ लाभिए-नहीं दिखाई देने वाले आहार को ग्रहण करना।
22. पुट्ठलाभिए-प्रश्न पूछ कर जहाँ आहारादि दिया जाये, वहाँ से ग्रहण करना।
23. अपुट्ठलाभिए-प्रश्न पूछे बिना जहाँ से आहारादि दिया जाये, वहाँ से ग्रहण करना।
24. भिक्ख लाभिए-रूखे-सूखे आहार को ग्रहण करना।
25. अभिक्ख लाभिए-सरस आहार को ग्रहण करना।
26. अण्णगिलायए-एक दिन पहले बने हुए ठण्डे भोजन को ग्रहण करना।
27. ओवणिहिए-नजदीक के घरों से भिक्षा लेना।
28. परिमिय पिण्डवाइए-प्रमाण सहित अर्थात् सीमित आहार लेना।
29. सुद्धेसणिए-दोष रहित आहार ग्रहण करना।
30. संखादत्तिए-दत्ति की संख्या का नियम करके आहार लेना।

4. रस परित्याग- जीभ के स्वाद को छोड़ना, विकार पैदा करने वाले घी, दूध, दही आदि विगयों का त्याग करना, स्निग्ध, गरिष्ठ भोजन न करना, तली हुई, चटपटी मिर्च-मसालों वाली स्वादिष्ट वस्तुओं का त्याग करना 'रस परित्याग' है।

रस परित्याग के 9 भेद-

1. णिव्वियतिए-दूध, दही, घी, तेल, मीठा आदि विगयों से रहित आहार करना।
2. पणीअ रस परिच्चाए-स्निग्ध-गरिष्ठ आहार का त्याग करना।
3. आयंबिलए-आयम्बिल तप करना।
4. आयामसित्थ भोई- चावल के मांड आदि का आहार लेना।

5. अरसाहारे-बघार नहीं दिये हुए आहार को लेना।

6. विरसाहारे- पुराना एवं निस्सार आहार लेना।

7. अंताहारे- चना, परमल आदि का आहार लेना।

8. पंताहारे- खाने के बाद जो शेष बचा हो उसका आहार लेना।

9. लूहाहारे- रूखा-सूखा आहार लेना।

5. कायक्लेश– कर्मों की निर्जरा के लिये उग्र वीरासन आदि आसन करना, शरीर की शोभा शुश्रूषा का त्याग करना इस प्रकार शरीर को कष्ट सहिष्णु बनाना 'कायक्लेश तप' है।

कायक्लेश तप के तेरह भेद इस प्रकार हैं-

1. ठाणट्ठितिए- खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करें।
2. ठाणाइए-बार-बार कायोत्सर्ग करें।
3. उक्कुडु आसणिए-उकडु आसन से बैठें।
4. पडिमट्ठाई-प्रतिमाएँ धारण करें।
5. वीरासणिए-वीरासन से बैठें।
6. नेसज्जिए-पलाथी आसन से बैठें।
7. दंडायए-लम्बा लेटकर पड़ा रहें।
8. लडडसाई-दोनों एडी और सिर भूमि पर लगाये तथा शेष भाग ऊपर रखकर सोए।
9. आयावए-आतापना ग्रहण करें।
10. अवाउडए-बिना वस्त्रों के खुले मैदानादि में कायोत्सर्ग करें।
11. अकंडूअए- शरीर को खुजाले नहीं।
12. अणिट्ठूहए- थूँक को बाहर थूँके नहीं।
13. सव्वगाय परिकम्म विभूस विप्पमुक्के-शरीर की विभूषा नहीं करें।

6. पडिसंलीणया (प्रतिसंलीनता)– प्रतिसंलीनता का अर्थ है- गोपन करना। इन्द्रिय, कषाय और योगों की अशुभ प्रवृत्तियों से आत्म-गुणों की रक्षा करना 'प्रतिसंलीनता तप' है।

प्रतिसंलीनता तप के 13 भेद हैं- 1-5. इन्द्रिय प्रतिसंलीनता- श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय- इन पाँचों इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों (शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श) की ओर जाने से रोकना और प्राप्त पाँचों इन्द्रियों के अनुकूल विषयों में राग और प्रतिकूल विषयों में द्वेष न करना।

6-9. कषाय प्रतिसंलीनता- क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों को उत्पन्न न होने देना और उत्पन्न हो जाने पर इन्हें निष्फल बनाना,

10-12. योग प्रतिसंलीनता के 3 भेद- मन प्रतिसंलीनता- मन की अशुभ प्रवृत्ति पर नियन्त्रण करना और शुभ प्रवृत्तियों को मन में प्रवर्ताना, वचन प्रतिसंलीनता- अशुभ वचन पर नियन्त्रण करना और शुभ-निर्दोष- सत्य वचन कहना, मौन रखना, काय प्रतिसंलीनता- हाथ-पैर की चेष्टाओं को वश में करना यानी हाथ-पैर से बुरी, हिंसाकारी हरकतें न करना, कछुओं की तरह इन्द्रियों का गोपन करना और शरीर के सभी अंगों पर काबू रखना,

13. विविक्त शयनासन सेवनता-स्त्री, पशु, नपुंसक रहित मकान में आराम, उद्यान, सभा, प्याऊ आदि स्थानों में प्रासुक एषणीय पाट, पाटला, शय्या, संस्तारक ग्रहण करके रहना।

7. प्रायश्चित्त- धारण किये हुए व्रतों में प्रमाद से लगने वाले दोषों की जिससे शुद्धि हो, उसे प्रायश्चित्त कहते हैं।

प्रायश्चित्त के 50 भेद- दस प्रकार का प्रायश्चित्त, दस प्रकार की प्रतिसेवना, प्रायश्चित्त देने वाले के दस गुण, प्रायश्चित्त लेने वाले के दस गुण, प्रायश्चित्त- (आलोचना) के दस दोष।

दस प्रकार का प्रायश्चित्त-

1. आलोचना- गुरु के समक्ष दोषों को प्रकट करना।
2. प्रतिक्रमण- दोषों के लिए पश्चात्ताप करते हुए प्रतिक्रमण करना।
3. तदुभय-आलोचना व प्रतिक्रमण दोनों करना।
4. विवेक-अकल्पनीय आहारादि आने पर उसे परठ देना।
5. व्युत्सर्ग-कायोत्सर्ग करना।
6. तप-अनशनादि तप करना।
7. छेद-दीक्षा पर्याय में कमी करना।
8. मूल-नई दीक्षा देकर पुनः महाव्रतों में आरोपण करना।
9. अनवस्थाप्पार्ह-महाव्रतों से अलग कर दोष शुद्धि हेतु विशेष तप कराना, शुद्धि हो जाने पर पुनः दीक्षा देना।
10. पारांचिकार्ह-गृहस्थ वेष पहनाकर उत्कृष्ट बारह वर्ष तक अलग रखना, उत्कृष्ट तप कराना, बाद में पुनः दीक्षा देना।

दस प्रकार की प्रतिसेवना-

1. दर्प- अहंकारवश संयम की विराधना करना।
2. प्रमाद-प्रमाद के वशीभूत होकर दोष लगाना।
3. अनाभोग-बिना उपयोग के अज्ञानवश संयम में दोष लगाना।
4. आतुर-भूखादि से पीड़ित होकर दोष लगाना।
5. आपत्ति-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से आपत्ति आने पर दोष लगाना।
6. शंकित-अनेषणीय आहार होने पर भी शंकित होकर दोष लगाना।
7. सहसाकार-बिना सोचे समझे अचानक कार्य कर दोषों का सेवन करना।
8. भय-राजा, चोर आदि के भय से दोष लगाना।
9. प्रद्वेष-द्वेष या ईर्ष्या के वश दोष लगाना।
10. विमर्श- शिष्यादि की जाँच के लिये दोष लगाना।

प्रायश्चित्त देने वाले के 10 गुण-

1. आचारवन्त- ज्ञानादि पाँच आचार वाला।
2. अवधारणवान- प्रायश्चित्त का ज्ञाता या आधारवान, आलोचना करने वाले के सभी अतिचार दोषों को मन में ही रखने वाला।
3. व्यवहारवान- आगम, सूत्र, आज्ञा, धारणा और जीत इन पाँच व्यवहारों का ज्ञाता।
4. अपव्रीडक- लज्जावश दोषों को छिपाने वाले शिष्य की लज्जा दूर कराने वाला।
5. प्रकुर्वक- आलोचना किये गये दोष का प्रायश्चित्त देकर शुद्धि कराने में समर्थ।
6. अपरिश्रावी- आलोचित दोषों को दूसरे के सामने प्रकट नहीं करने वाला।
7. निर्यापक- एक साथ पूरा प्रायश्चित्त लेने में असमर्थ साधु को खण्ड-खण्ड में प्रायश्चित्त देकर निर्वाह करने वाला।
8. अपायदर्शी- आलोचना नहीं करने से परलोक का भय तथा दूसरे दोष बताने वाला।
9. प्रियधर्मा- जिसको धर्म प्रिय लगता हो।
10. दृढ़धर्मा- जो धर्म में दृढ़ हो।

प्रायश्चित्त लेने वाले के 10 गुण-

1. जाति सम्पन्न- उत्तम जाति वाला, मातृ पक्ष को जाति कहते हैं।
2. कुल सम्पन्न- उत्तम कुल वाला, पितृ पक्ष को कुल कहते हैं।
3. विनय सम्पन्न- विनय वाला।
4. ज्ञान सम्पन्न- ज्ञान वाला।
5. दर्शन सम्पन्न- शुद्ध श्रद्धा वाला।
6. चारित्र सम्पन्न- उत्तम चारित्र पालने वाला।
7. क्षान्त- क्षमा धारण करने वाला।
8. दान्त- इन्द्रियों का दमन करने वाला जितेन्द्रिय।
9. अमायी- माया-कपट रहित अर्थात् सरल परिणामों वाला।
10. अपश्चात्तापी- आलोचना करने के बाद पश्चात्ताप न करने वाला।

प्रायश्चित्त के दस दोष-

1. आकंपइत्ता-काँपते- काँपते आलोचना करे।
2. अणुमाणइत्ता- अनुमान लगाकर आलोचना करें।
3. दिठ्ठं- दोष सेवन करते किसी ने देख लिया हो तो आलोचना करे, नहीं देखा हो तो आलोचना नहीं करे।
4. बायरं- बादर अर्थात् बड़े-बड़े दोष की आलोचना करे सूक्ष्म (छोटा) दोष छिपा लेवे।
5. सुहुमं- सूक्ष्म अर्थात् छोटे-छोटे दोष की आलोचना करे, बड़े दोष छिपा लेवे।

6. छण्णं- लज्जावश कोई सुन न ले, इस ख्याल से धीमे-धीमे बोलकर आलोचना करे।

7. सद्दाउलगं- दूसरों को सुनाने के लिये जोर-जोर से बोलकर आलोचना करे।

8. बहुजण- एक ही दोष की अनेक गीतार्थ मुनियों के पास आलोचना करे।

9. अव्वत्त- जिसे प्रायश्चित्त का ज्ञान नहीं है, ऐसे अगीतार्थ मुनि के पास आलोचना करे।

10. तस्सेवी- जिस दोष की आलोचना करनी है, उसी दोष का सेवन करने वाले साधु के पास आलोचना करे।

8. विनय- ज्ञान आदि सद्गुणों में एवं इन गुणों के धारक महापुरुषों के प्रति बहुमान रखना, उनको उचित सत्कार सम्मान देना 'विनय' कहलाता है। विनय के सात भेद हैं- 1. ज्ञान विनय, 2. दर्शन विनय 3. चारित्र विनय 4. मन विनय 5. वचन विनय 6. काय विनय 7. लोकोपचार विनय।

(1) ज्ञान विनय- ज्ञान और ज्ञानी के प्रति श्रद्धा भक्ति बहुमान रखना, विनय पूर्वक विधि के साथ ज्ञान ग्रहण करना, उसका अभ्यास करना ज्ञान विनय है। ज्ञान विनय के 5 भेद हैं- 1. मतिज्ञान विनय 2. श्रुतज्ञान विनय 3. अवधिज्ञान विनय 4.मनः पर्यायज्ञान विनय 5. केवलज्ञान विनय।

(2) दर्शन विनय- अरिहन्त देव, पंच महाव्रतधारी निर्ग्रन्थ गुरू और केवली भाषित धर्म पर श्रद्धा रखना 'दर्शन विनय' है। दर्शन और दर्शनवान के प्रति भक्ति बहुमान रखना दर्शन विनय है। दर्शन विनय के दो भेद हैं- शुश्रूषा विनय और अनाशातना विनय। शुश्रूषा विनय के दस भेद-

1. गुरु महाराज एवं रत्नाधिक (दीक्षा में बड़े) को आते देखकर खड़े हो जाना।

2. आसन ग्रहण करने के लिये आमन्त्रित करना अथवा जहाँ बैठना चाहते हों, वहाँ आसन ले जाना।

3. उनके लिये आसन बिछाना।

4. उनका सत्कार करना।

5. उन्हें सम्मान देना।

6. उनका गुणग्राम करना, उनकी स्तुति करना।

7. हाथ जोड़कर सामने खड़े रहना।

8. गुरु महाराज आ रहे हों तो उनके सामने जाना।

9. जब तक विराजे तब तक उनकी सेवा करना।

10. गुरू महाराज जा रहे हों तो उनके पीछे-पीछे जाना यानी उन्हें पहुँचाने जाना।

अनाशातना विनय के 45 भेद- अरिहन्त भगवान, अरिहन्त प्ररूपित धर्म, आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, कुल, गण, संघ, क्रियावन्त, सांभोगिक, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मनः पर्याय ज्ञान और केवल ज्ञान- इन पन्द्रह की आशातना न करना, इन पन्द्रह में भक्ति बहुमान रखना और इन पन्द्रह के गुणों की स्तुति करना। इस प्रकार अनाशातना विनय के 45 भेद हुए।

(3) चारित्र विनय के 5 भेद- 1. सामायिक चारित्र विनय, 2. छेदोपस्थापनीय चारित्र विनय 3. परिहार विशुद्धि चारित्र विनय 4. सूक्ष्मसम्पराय चारित्र विनय 5. यथाख्यात चारित्र विनय।

(4) मन विनय के दो भेद– अप्रशस्त मन विनय और प्रशस्त मन विनय। अप्रशस्त मन विनय के बारह भेद- 1. सावद्य, 2. सक्रिय, 3. सकर्कश, 4. कटुक, 5. निष्ठुर, 6. फरूष, 7. आश्रवकारी, 8. छेदकारी, 9. भेदकारी, 10. परितापनाकारी, 11. उपद्रवकारी, 12. भूतोपघातक । उपर्युक्त अप्रशस्त मन विनय के बारह भेद मन के विशेषण हैं अर्थात् इन बारह विशेषण युक्त मन का होना अप्रशस्त मन विनय है। इन बारह बोल सहित अप्रशस्त भाव युक्त मन न प्रवर्तावे।

प्रशस्त मन विनय के भी बारह भेद होते हैं। अप्रशस्त मन विनय के बारह बोलों से विपरीत। जैसे- 1. असावज्जे- निरवद्य 2. अकिरिए- अक्रिय 3. अकक्कसे- अकर्कश 4. अकडुए- अकटुक (इष्ट) 5. अणिट्ठुरे- अनिष्ठुर 6. अफरूसे- अफरूष 7. अणण्हयकरे- अनाश्रवकारी 8. अछेयकरे- अछेदकारी 9. अभेयकरे- अभेदकारी 10. अपरितावणकरे- परितापना रहित 11. अणुद्दवणकरे- उपद्रव रहित 12. अभूओवघाइए- अभूतोपघातक- इन बारह बोल सहित प्रशस्त भाव युक्त मन प्रवर्तावे।

(5) वचन विनय के दो भेद– अप्रशस्त वचन विनय और प्रशस्त वचन विनय। दोनों के बारह-बारह भेद मन विनय के समान समझने चाहिये।

(6) काय विनय के दो भेद– अप्रशस्त काय विनय और प्रशस्त काय विनय। अप्रशस्त काय विनय के सात भेद- 1. बिना उपयोग के असावधानी के साथ जाना, 2. खड़ा रहना, 3. बैठना, 4. सोना, 5. उल्लंघन करना, 6. बार-बार उल्लंघन करना, 7. सभी इन्द्रियों और काय योग की प्रवृत्ति करना।

प्रशस्तकाय विनय के सात भेद- उपयोगपूर्वक सावधानी के साथ- 1. जाना 2. खड़ा होना 3. बैठना 4. सोना 5. उल्लंघन करना 6. बार-बार उल्लंघन करना और 7. सभी इन्द्रियों और काययोग की प्रवृत्ति करना।

(7) लोकोपचार विनय के सात भेद-

1. गुरु के समीप रहना।
2. गुरु तथा बड़ों की इच्छानुसार प्रवृत्ति करना।
3. ज्ञानादि की प्राप्ति के लिये उन्हें आहारादि लाकर देना।
4. ज्ञान सिखाने वाले गुरुजनों की सेवा करना।
5. बीमार साधुओं वैयावृत्त्या करना।
6. देश काल देखकर उचित प्रवृत्ति करना।
7. सभी कार्यों में गुरु महाराज के अनुकूल रहकर प्रवृत्ति करना।

इस प्रकार विनय के 5+55+5+24+24+14+ 7=134 भेद हुए।

(9) वैयावच्च (वैयावृत्त्य)– आचार्य, उपाध्याय आदि की आहार-पानी आदि से तथा अन्य प्रकार से सेवा करना 'वैयावच्च' है।

वैयावच्च के अधिकारी दस हैं– अतः वैयावच्च के भी दस भेद बताये गये हैं- 1. आचार्य की वैयावच्च, 2. उपाध्याय की वैयावच्च, 3. नवदीक्षित की वैयावच्च, 4. ग्लान- रोगी की वैयावच्च, 5. तपस्वी की वैयावच्च, 6. स्थविर (अवस्था, ज्ञान और दीक्षा पर्याय से जो स्थविर हो) की वेयावच्च, 7. स्वधर्मी साधु-साध्वी की वैयावच्च, 8. कुल की वैयावच्च, 9. गण की वैयावच्च, 10. संघ की वैयावच्च।

(10) स्वाध्याय– आत्मस्वरूप का अध्ययन करना, मर्यादा पूर्वक जिनवाणी का अध्ययन करना 'स्वाध्याय तप' कहलाता है। पढ़ना, पढ़ाना, सन्देह होने पर गुरु से पूछना, पढ़े हुए ग्रन्थ की पुनःपुनः आवृत्ति करना, मनन करना, धर्मोपदेश देना भी स्वाध्याय है।

स्वाध्याय के 5 भेद– 1. वायणा (वाचना)- गुरु से सूत्र अर्थ पढ़ना, 2. पडिपुच्छणा (प्रतिपृच्छना)- शंका-समाधान के लिए अथवा विशेष निर्णय के लिए प्रश्न करना, 3. परियट्टणा (परिवर्तना)- सीखे हुए ज्ञान को बार-बार फेरना, 4. अणुप्पेहा (अनुप्रेक्षा)- सीखे हुए सूत्रादि ज्ञान का मनन-चिन्तन करना, 5. धम्मकहा (धर्मकथा)- धर्मोपदेश देना।

(11) ध्यान– मन को प्रयत्न विशेष से भिन्न-भिन्न विषयों के चिन्तन से हटाकर एक ही विषय पर स्थिर रखना 'ध्यान' कहलाता है। ध्यान की यह व्याख्या छद्मस्थों के ध्यान की अपेक्षा से है। ध्यान सन्नी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में ही होता है, असन्नी जीवों में नहीं। केवलज्ञानी की अपेक्षा से योगों का निरोध करना 'ध्यान' कहलाता है। ध्यान चार हैं- 1. आर्त्तध्यान 2. रौद्रध्यान 3. धर्मध्यान 4. शुक्लध्यान।

आर्त्तध्यान के 4 भेद (पाया)–

1. अमनोज्ञ शब्दादि विषयों के वियोग का निरन्तर चिन्तन करना।
2. मनोज्ञ शब्दादि विषयों का संयोग निरन्तर रहे, ऐसा चिन्तन करना।
3. व्याधि जनित वेदना से दुःखी होकर उसकी शान्ति के लिए चिन्तन करना।
4. प्राप्त काम-भोगों का कभी वियोग न हो, ऐसा चिन्तन करना।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण–

1. ऊचे स्वर से रोना-चिल्लाना।
2. दीनपना लाना।
3. टप-टप आँसू गिराना।
4. बार-बार विलाप करना।

रौद्रध्यान के चार भेद (पाया)–

1. हिंसानुबन्धी-हिंसाकारी कार्यों का चिन्तन करना।
2. मृषानुबन्धी-झूठ बोलने का चिन्तन करना।
3. स्तेनानुबन्धी- चोरी करने तथा चोरी के उपायों का चिन्तन करना।
4. संरक्षणानुबन्धी-शब्दादि विषयों एवं धन-धान्यादि के संरक्षण का चिन्तन करना।

रौद्रध्यान के चार लक्षण–

1. हिंसा, झूठ, चोरी आदि दोषों का सेवन करना।
2. हिंसा, झूठ, चोरी आदि दोषों का बार-बार सेवन करना।
3. अधर्म के कार्यों में धर्म मानकर प्रवृत्ति करना।
4. मरण पर्यन्त हिंसादि पाप कर्मों में रचे-पचे रहना।

धर्मध्यान के चार भेद (पाया)-

1. आज्ञाविचय-जिनेश्वर भगवान की आज्ञा एवं उनके गुणों का चिन्तन करना।
2. अपायविचय- राग-द्वेषादि दोषों को तथा उनसे होने वाली हानियों का चिन्तन करना।
3. विपाकविचय-कर्मों के विपाक-फल का चिन्तन करना।
4. संस्थान विचय-पुरुषाकार लोक का चिन्तन करना।

धर्मध्यान के चार लक्षण-

1. आज्ञारुचि- जिनाज्ञा में रुचि-श्रद्धा रखना,
2. निसर्गरुचि- बिना किसी उपदेश के, पूर्व संस्कारों के कारण, स्वभाव से ही जिनभाषित तत्त्वों में श्रद्धा रखना,
3. उपदेशरुचि- साधु-सन्तों का उपदेश सुनकर तत्त्व-ज्ञान समझकर जिनभाषित तत्त्वों में श्रद्धा रखना,
4. सूत्ररुचि- सूत्र पढ़कर वीतराग द्वारा प्रतिपादित तत्त्व समझना और समझकर श्रद्धा करना।

धर्मध्यान के चार आलम्बन- 1. वायणा, 2. पडिपुच्छणा, 3. परियट्टणा, 4. धम्मकहा। इनका स्वरूप स्वाध्याय में बताया जा चुका है।

धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षा (भावना)-

1. अनित्यानुप्रेक्षा- संसार, सांसारिक पदार्थ एवं सम्बन्ध तथा शरीर की अनित्यता, नश्वरता का चिन्तन करना,
2. अशरणानुप्रेक्षा- माता, पिता, बहिन, भाई, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि कोई भी इस आत्मा की जन्म, जरा और मृत्यु के भय से तथा विविध-व्याधि जन्य वेदना से रक्षा करने वाला नहीं हैं, इस प्रकार अशरण भाव का चिन्तन करना,
3. एकत्वानुप्रेक्षा- यह जीव अकेला ही आया है और अकेला ही जाने वाला है। माता-पिता, स्वजन-सम्बन्धी तथा धन-सम्पत्ति आदि कोई भी अपने नहीं हैं। यह शरीर तक अपना नहीं है। इस प्रकार आत्मा के एक असहाय होने का चिन्तन करना,
4. संसारानुप्रेक्षा- यह जीव माता बनकर पुत्र बनता है, पुत्र होकर स्त्री होता है और स्त्री होकर बहिन होता है, इस प्रकार संसार की विचित्रता का एवं गति-आगति आदि के स्वरूप का चिन्तन करना।

शुक्ल ध्यान के चार भेद-

1. पृथक्त्व वितर्क सविचारी- जब ध्यान करने वाला पूर्वधर हो तो पूर्वों के ज्ञान के आधार से, अन्यथा सम्भावित श्रुत के आधार से भेदप्रधान चिन्तन करना।
2. एकत्व वितर्क अविचारी- पूर्व ज्ञान अथवा सम्भावित श्रुतज्ञान के आधार पर किसी एक ही द्रव्य अथवा पर्याय को लेकर उस पर अभेदप्रधान चिन्तन करना।
3. सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाती- मोक्ष जाने से पूर्व केवली भगवान के मन योग, वचन योग और काया के स्थूल योग का निरोध करने के पश्चात् सूक्ष्म क्रिया का निरोध करते समय की अवस्था।

4. समुच्छिन्न क्रिया अनिवृत्ति- शैलेशी अवस्था को प्राप्त केवली भगवान सभी योगों का निरोध कर जब अयोगी बन जाते हैं, उस समय की चौदहवें गुणस्थान की अवस्था।

शुक्ल ध्यान के पहले दो भेदों में श्रुत ज्ञान का आधार होता है और पिछले दो भेदों में श्रुतज्ञान का आलम्बन नहीं होता। शुक्ल ध्यान का पहला भेद आठवें गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक होता है। ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थान में शुक्ल ध्यान का दूसरा भेद होता है। तेरहवें गुणस्थान के अन्त में जब केवली भगवान श्वासोच्छवास का निरोध करते हैं तब शुक्ल ध्यान का तीसरा भेद होता है। चौदहवें गुणस्थान में शुक्ल ध्यान का चौथा भेद पाया जाता है।

शुक्ल ध्यान के चार लक्षण-

1. विवेक- शरीर से आत्मा को भिन्न समझना और आत्मा को सभी संयोगों से भिन्न समझना।
2. व्युत्सर्ग- निःसंग यानी संग (आसक्ति) रहित होने से शरीर और उपधि का त्याग करना।
3. अव्यथ- देवादिक का उपसर्ग होने पर भी भयभीत होकर विचलित न होना।
4. असंमोह- देवादि की माया से मोहित न होना और सूक्ष्म पदार्थ विषयक चिन्तन में न उलझना।

शुक्ल ध्यान के चार आलम्बन- 1. खंती (क्षमा)- क्रोध का त्याग, 2. मुत्ति (मुक्ति)- लोभ का त्याग, 3. अज्जवे (आर्जव)- माया का त्याग, 4. मद्दवे (मार्दव)- मान का त्याग।

शुक्ल ध्यान की चार अनुप्रेक्षा (भावना)-

1. अपायानुप्रेक्षा- प्राणातिपात, मृषावाद आदि आश्रव द्वारों से होने वाले अनर्थों का चिन्तन करना।
2. अशुभानुप्रेक्षा- संसार के अशुभपन का चिन्तन करना।
3. अनन्तवर्तितानुप्रेक्षा- भव परम्परा का अन्त नहीं है। अनन्त काल से यह जीव संसार की विभिन्न योनियों में निरन्तर भ्रमण कर रहा है। इस प्रकार का चिन्तन करना।
4. विपरिणामानुप्रेक्षा- वस्तुओं का प्रतिक्षण विविध रूपों में विपरिणमन- परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार का चिन्तन करना।

(12) व्युत्सर्ग- व्युत्सर्ग का अर्थ त्याग है। व्युत्सर्ग के दो भेद हैं- द्रव्य व्युत्सर्ग और भाव व्युत्सर्ग। द्रव्य व्युत्सर्ग के चार भेद-

1. शरीर व्युत्सर्ग- शरीर का त्याग करना यानी शरीर में ममत्व न रखना।
2. गण व्युत्सर्ग- गच्छ का व्युत्सर्ग (त्याग) कर एकान्त में ध्यान करना, जिनकल्प स्वीकार करना।
3. उपधि व्युत्सर्ग- उपकरण का त्याग करना।
4. भक्त पान व्युत्सर्ग- आहार पानी का त्याग करना।

भाव व्युत्सर्ग के 4 भेद-

1. कषाय व्युत्सर्ग- क्रोध, मान, माया, लोभ रूप चार कषाय का त्याग करना।
2. योग व्युत्सर्ग- मन, वचन, काया के योगों का त्याग करना।
3. कर्म व्युत्सर्ग- ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों के बन्ध के कारणों का त्याग करना। आठ कर्मों के भेद से कर्म व्युत्सर्ग के भी आठ भेद होते हैं।
4. संसार व्युत्सर्ग- नरकायु आदि के कारण रूप मिथ्यात्व आदि का त्याग करना।

संसार व्युत्सर्ग के चार भेद- नरक संसार व्युत्सर्ग, तिर्यंच संसार व्युत्सर्ग, मनुष्य संसार व्युत्सर्ग और देव संसार व्युत्सर्ग।

इस प्रकार निर्जरा के 20+14+30+9+13+ 13+50+134+10+5+48+8= 354 भेद होते हैं।

बन्ध तत्व

बन्ध के चार भेद- 1. प्रकृति बन्ध, 2. स्थिति बन्ध, 3. अनुभाग बन्ध और 4. प्रदेशबन्ध।

1. प्रकृति बन्ध- जीव के साथ सम्बद्ध कर्म-पुद्गलों में ज्ञान को आवरण करने, दर्शन को रोकने, सुख-दुःख देने आदि अलग-अलग स्वभाव का होना 'प्रकृति बन्ध' कहलाता है।

2. स्थिति बन्ध- जीव के साथ सम्बद्ध कर्म- पुद्गलों की, अमुक काल तक ज्ञान को आवरण करने आदि रूप अपने-अपने स्वभाव का त्याग न करते हुए, जीव के साथ रहने की काल मर्यादा को 'स्थिति बन्ध' कहते हैं।

3. अनुभाग बन्ध- कर्मों के फल देने की तीव्रता-मन्दता आदि विशेषताओं का न्यूनाधिक होना 'अनुभाग बन्ध' कहलाता है। अनुभाग बन्ध को अनुभाव बन्ध, अनुभव बन्ध तथा रस बन्ध भी कहते हैं।

4. प्रदेश बन्ध- जीव के साथ सम्बद्ध कार्मण वर्गणा के स्कन्धों का न्यूनाधिक प्रदेश वाला होना 'प्रदेश बन्ध' कहलाता है।

उक्त चार प्रकार के बन्ध का स्वरूप समझाने के लिए मोदक का दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे- सोंठ, पीपर, कालीमिर्च आदि वायुनाशक पदार्थों से बने हुए मोदक का स्वभाव वायुनाश करने का होता है। इसी प्रकार पित्तनाशक एवं कफनाशक पदार्थों से बने हुए मोदक का स्वभाव क्रमशः पित्त और कफनाश करने का होता है। इसी तरह जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कार्मण वर्गणा के स्कन्धों में से कुछ ज्ञान को ढँकते हैं तो कुछ दर्शन को रोकते हैं, कुछ सुख-दुःख देते हैं तो कुछ आत्मा की शक्ति को ही दबा देते हैं। इस प्रकार आत्मा से सम्बद्ध कार्मण वर्गणा के स्कन्धों का अलग-अलग स्वभाव होना प्रकृति बन्ध है।

जैसे- कुछ मोदक एक सप्ताह तक, कुछ एक पक्ष तक, कुछ एक माह तक विकृत नहीं होते। इस मर्यादा के उपरान्त वे खराब हो जाते हैं। इसी प्रकार कोई कर्म आत्मा के साथ अन्तर्मुहूर्त तक, तो कोई बीस कोडा-कोडी सागरोपम तक और कोई सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम तक रहते हैं। इस प्रकार कर्मों का अलग-अलग काल मर्यादा तक अपने स्वभाव का त्याग न करते हुए आत्मा के साथ रहना स्थिति बन्ध है।

जैसे- कोई मोदक अधिक मधुर होता है, कोई कम मधुर होता है। कोई मोदक अधिक कटु होता है और कोई कम कटु होता है। इसी प्रकार कर्म पुद्गलों की मन्द, मन्दतर और मन्दतम तथा तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम शुभ-अशुभ फल देने की शक्ति अनुभाग बन्ध है।

जैसे- मोदक परिमाण में दो तोले, पाँच तोले, आधा पाव, और पाव- इस प्रकार भिन्न-भिन्न परिमाण का होता है इसी प्रकार कर्म स्कन्धों में न्यूनाधिक प्रदेशों का होना प्रदेश बन्ध है।

प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग के निमित्त से होते हैं, जबकि स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध कषाय के निमित्त से होते हैं।

8 कर्मों की 148 प्रकृति में से 120 प्रकृतियों का बन्ध होता है- ज्ञानावरणीय की 5, दर्शनावरणीय की 9, वेदनीय की 2, मोहनीय की 28 में से समकित मोह, मिश्र मोह इन दो को छोड़कर 26, आयुकर्म की 4, नाम कर्म की 93 में से 5 शरीर के बन्धन, 5 संघातन, 16 वर्णादि, इन 26 प्रकृतियों को छोड़कर 67, गोत्र कर्म की 2 और अन्तराय कर्म की 5, इस प्रकार 5+9+2+26+4+ 67+2+5= 120

मोक्ष तत्त्व

बारहवें गुणस्थान में रहा हुआ मुनि अन्त समय में तीन घाती कर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म) का क्षय करके (मोहनीय कर्म का दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में क्षय हो चुका है) केवल ज्ञान, केवल-दर्शन प्राप्त कर तेरहवें सयोगी केवली गुणस्थान में जाता है। इस गुणस्थान में जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन क्रोड़ पूर्व तक रहता है। अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर योग का निरोध करता है। तत्पश्चात् चौदहवें गुणस्थान में शैलेशी भाव अंगीकार कर चार अघाती कर्मों का क्षय करता है और एरण्ड के बीज की तरह ऊर्ध्व गति करता हुआ लोक के अग्र भाग में स्थित सिद्ध क्षेत्र में, जहाँ अनन्त सिद्ध हैं, पहुँचकर वहाँ विराजमान होता है। आठ कर्मों के क्षय होने से सिद्धात्मा आठ गुण- अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, निराबाध सुख, क्षायिक समकित, अटल अवगाहना, अमूर्ति, अगुरुलघु, अनन्त आत्म-सामर्थ्य से शोभित हैं। मोक्ष तत्त्व का नौ द्वारों से वर्णन किया जाता है। 1. सत्पद प्ररूपणा द्वार, 2. द्रव्य प्रमाण द्वार, 3. क्षेत्र द्वार, 4. स्पर्शना द्वार, 5. काल द्वार, 6. अन्तर द्वार, 7. भाग द्वार, 8. भाव द्वार और 9. अल्प बहुत्त्व द्वार।

1. सत्पद प्ररूपणा द्वार- मोक्ष सत्स्वरूप है, किन्तु आकाश कुसुम की तरह असत्स्वरूप नहीं है। अर्थात् जैसे आकाश में कुसुम नहीं खिलते, उसी प्रकार मोक्ष का अस्तित्व नहीं होता, ऐसा नहीं समझना किन्तु मोक्ष सत् रूप हैं, सदाकाल रहने वाला है, ऐसा समझना चाहिए। इस द्वार के अन्तर्गत चौदह मार्गणाओं द्वारा मोक्ष का वर्णन किया जाता है। चौदह मार्गणाएँ ये हैं-

गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहारक। इन चौदह मार्गणाओं के कुल भेद 62 होते हैं निम्नांकित दस मार्गणाओं के जीव मोक्ष जा सकते हैं-

1. मनुष्य गति, 2. पंचेन्द्रिय जाति, 3. त्रसकाय, 4. भव्य, 5. संज्ञी, 6. यथाख्यात चारित्र, 7. क्षायिक सम्यक्त्व, 8. अनाहारक, 9. केवल ज्ञान और 10. केवल दर्शन। चार मार्गणा- कषाय, वेद, योग और लेश्या सहित जीव मोक्ष नहीं जा सकता।

2. द्रव्य प्रमाण द्वार- द्रव्य से सिद्ध जीव अनन्त हैं। अभव्य से अनन्त गुणे हैं।

3. क्षेत्र द्वार- सिद्ध जीव चौदह राजू प्रमाण लोक के असंख्यातवें भाग में यानी 45 लाख योजन प्रमाण क्षेत्र में अवस्थित हैं।

4. स्पर्शना द्वार- सिद्ध भगवान् की जितनी अवगाहना है उससे स्पर्शना कुछ अधिक है।

5. काल द्वार- एक सिद्ध की अपेक्षा सिद्ध जीव सादि अनन्त हैं और सभी की अपेक्षा अनादि अनन्त हैं।

6. अन्तर द्वार- सिद्धों में अन्तर नहीं पड़ता। सिद्ध जीव वापस संसार में नहीं आते और जहाँ एक सिद्ध है वहाँ अनन्त सिद्ध हैं, इसलिए अन्तर नहीं होना कहा गया है। केवल ज्ञान केवल दर्शन सम्बन्धी अन्तर भी सिद्धों में नहीं है। इनकी अपेक्षा भी सभी सिद्ध जीव समान हैं।

7. भाग द्वार- सिद्ध जीव संसारी जीवों के अनन्तवें भाग हैं। सभी सिद्धों से एक निगोद के जीव अनन्त गुण अधिक हैं।

8. भाव द्वार- सिद्धों में क्षायिक और पारिणामिक ये दो भाव पाये जाते हैं। क्षायिक भाव में केवल ज्ञान, केवल दर्शन और क्षायिक सम्यक्त्व पाये जाते हैं। पारिणामिक भाव में जीवत्व पाया जाता है।

9. अल्पबहुत्व द्वार- सबसे थोड़े नपुंसक लिंग सिद्ध हैं। स्त्रीलिंग सिद्ध उनसे संख्यात गुणा अधिक हैं और उनसे भी पुरुष लिंग सिद्ध संख्यात गुणा हैं। कारण यह है कि नपुंसक लिंग वाले एक समय में उत्कृष्ट दस मोक्ष जा सकते हैं। स्त्री लिंग से एक समय में उत्कृष्ट बीस और पुरुष लिंग से एक समय में 108 मोक्ष जा सकते हैं।

सिद्धों के पन्द्रह भेद-

1. तीर्थ सिद्ध- तीर्थ (जिनवचन, चतुर्विध संघ और प्रथम गणधर) की स्थापना होने के बाद जो सिद्ध होते हैं, वे तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- अर्जुन माली,

2. अतीर्थ सिद्ध- तीर्थ की स्थापना होने से पहले अथवा तीर्थ का विच्छेद होने पर जो सिद्ध होते हैं, वे अतीर्थ सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- मरूदेवी माता आदि।

3. तीर्थंकर सिद्ध- तीर्थंकर पद को प्राप्त कर जो मोक्ष में जाते हैं, वे तीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं जैसे- अजितनाथजी।

4. अतीर्थंकर सिद्ध- सामान्य केवली होकर मोक्ष में जाने वाले अतीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- धन्नाजी।

5. स्वयं बुद्ध सिद्ध- जो दूसरों के उपदेश बिना स्वयमेव बोध प्राप्त कर मोक्ष में जाते हैं, वे स्वयं बुद्ध-सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- तीर्थंकर आदि।

6. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध- जो किसी के उपदेश बिना ही पदार्थ विशेष को देखकर वैराग्य प्राप्त करते हैं और दीक्षा धारण कर मोक्ष में जाते हैं, वे प्रत्येक बुद्ध सिद्ध हैं, जैसे- नमिराज, करकंडू मुनि आदि।

7. बुद्धबोधित सिद्ध- गुरु के उपदेश से बोध प्राप्त कर, दीक्षित होकर जो मोक्ष में जाते हैं, इन्हें बुद्ध बोधित सिद्ध कहते हैं, जैसे- जम्बू स्वामी।

8. स्त्रीलिंग सिद्ध- जो स्त्री पर्याय में रहते हुए मोक्ष जाते हैं, उन्हें स्त्रीलिंग सिद्ध कहते हैं, जैसे- चन्दनबाला।

9. पुरुषलिंग सिद्ध- जो पुरुष पर्याय में रहते हुए मोक्ष में जाते हैं, उन्हें पुरुषलिंग सिद्ध कहते हैं, जैसे- गौतम स्वामी।

10. नपुंसक लिंग सिद्ध- नपुंसक पर्याय में रहते हुए मोक्ष जाने वाले नपुंसक लिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- गांगेय अणगार।

11. स्वलिंग सिद्ध- जैन साधु के वेष में रहते हुए मोक्ष जाने वाले स्वलिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- सुधर्मा स्वामी।

12. अन्यलिंग सिद्ध- अन्य मत के साधुओं के वेष में रहकर जो मोक्ष में जाते हैं, उन्हें अन्यलिंग सिद्ध कहते हैं, जैसे- वल्कल चीरी।

13. गृहस्थ लिंग सिद्ध- गृहस्थ के वेष में मोक्ष जाने वाले गृहस्थ लिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- मरूदेवी माता।

14. एक सिद्ध- एक समय में अकेला ही मोक्ष जाने वाला जीव एक सिद्ध कहलाता है, जैसे- महावीर स्वामी।

15. अनेक सिद्ध- एक समय में एक से अधिक यानी दो से लेकर एक सौ आठ तक मोक्ष में जाने वाले जीव अनेक सिद्ध कहलाते हैं, जैसे- भगवान ऋषभ देव।नव तत्त्वों के जानने से लाभ-

जो जीवादि नव तत्त्वों को जानता है, उसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है। सम्यक्त्व प्राप्त करने वाला जीव संसार को परीत्त- सीमित कर देता है एवं सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना कर सकल कर्मों को क्षय कर मोक्ष प्राप्त करता है।

।।नव तत्त्व का थोकड़ा समाप्त।।

स्तुति विभाग

भक्तामर स्तोत्र

33. मन्दार - सुन्दर - नमेरू - सुपारिजात -
संतानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टिरूद्धा।
गंधोदबिंदु - शुभमंद - मरूत्प्रपाता,
दिव्या दिव : पतति ते वचसां ततिर्वा।।

भावार्थ- इस श्लोक में 'पुष्प वृष्टि' नामक छठे प्रातिहार्य का वर्णन है। भगवान के समवसरण में फूलों की वर्षा ऐसी जान पड़ती है मानो भगवान के दिव्य वचन ही फैल गये हों।।33।।

34. शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रय - द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद् - दिवाकर - निरंतर भूरिसंख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम्।।

भावार्थ- इस श्लोक में 'भामण्डल' नामक सातवें प्रातिहार्य का वर्णन है। भामण्डल की प्रभा करोड़ों सूर्य के समान तेजयुक्तहोते हुए भी आतप देने वाली न होकर चन्द्रमा के समान शीतल व रात्रि का अन्धकार हरने वाली है।।34।।

35. स्वर्गापवर्ग - गममार्ग - विमार्गणेष्टः,
सद्धर्मतत्त्व - कथनैक - पटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व -
भाषास्वभाव - परिणामगुणैः प्रयोज्यः।।

भावार्थ- इसमें आठवें 'दिव्यध्वनि' नामक प्रातिहार्य का वर्णन है। भगवान की वाणी का यह अतिशय है कि जो भी उसको सुनता है, वह अपनी भाषा में सरलता से समझ लेता है।।35।।

36. उन्निद्रहेम - नवपंकज - पुंजकांती -
पर्युल्लसन्नख - मयूख - शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति।।

भावार्थ- जहाँ-जहाँ भगवान चरण रखते हैं, वहाँ-वहाँ देवगण कमलों की रचना करते जाते हैं।।36।।

37. इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि।।

भावार्थ- जैसे प्रकाशमान तारागण सूर्य के समान प्रकाशित नहीं हो सकते, वैसे ही हरिहरादि देव आपकी समवसरण जैसी विभूति को धारण नहीं कर सकते।।37।।

38. श्च्योतन्मदाविलविलोल-कपोलमूल -
मत्त - भ्रमद् भ्रमरनाद - विवृद्धकोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धत - मापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्।।

भावार्थ- उच्छृंखल, क्रोधित एवं उन्मत्त हाथी के भय को भी आपकी स्तुति दूर कर देती है।।38।।

39. भिन्नेभ-कुम्भ - गलदुज्ज्वल - शोणिताक्त -
मुक्ताफलप्रकर - भूषित - भूमिभागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि, ,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते।।

भावार्थ- आपके चरणों का आश्रय लेने वाले मनुष्य पर भयानक सिंह भी आक्रमण नहीं कर सकता है।।39।।

40. कल्पांतकाल - पवनोद्धत - वह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्।
विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमापतन्तं,
त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषम्।।

भावार्थ- भयंकर दावाग्नि आपके भक्तजनों का कुछ भी अनिङ्ग नहीं कर सकती।।40।।

41. रक्तेक्षणं समदकोकिल - कंठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंक -
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः।।

भावार्थ- आपके नामरूपी नागदमनी जड़ी होने से भयानक सर्प भी कुछ नहीं करता। अर्थात् भक्तजन साँपों से निर्भय रहते हैं।।41।।

42. वल्गत्तुरंग - गजगर्जित - भीमनाद -
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकरमयूख - शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु-भिदामुपैति।।

भावार्थ- जैसे सूर्य के उदय होते ही अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार भयानक संग्राम में आपके नाम के कीर्तन से बड़े से बड़ा सैन्य बल भी नष्ट हो जाता ह।।42।।

43. कुन्ताग्रभिन्नगज - शोणित - वारिवाह -
वेगावतार - तरणातुरयोध - भीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा -
स्त्वत्पाद - पंकजवनाश्रयिणो लभन्ते।।

भावार्थ- जहाँ रक्तपानी की तरह बह रहा है, ऐसे महासंग्राम में भी आपके चरण-कमलों की सेवा करने वाले भक्तजन आसानी से विजय प्राप्त कर लेते हैं।।43।।

44. अम्भोनिधौ क्षुभित - भीषण - नक्रचक्र -
पाठीन - पीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ।
रंगत्तरंग - शिखरस्थित - यानपात्रा -
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति।।

भावार्थ- आपके नाम का स्मरण करने से भयानक समुद्र में फँसे हुए जहाज में स्थित पुरुष भी आसानी से पार चले जाते हैं।।44।।

45. उद्भूतभीषणजलोदर - भारभुग्ना :
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत - जीविताशाः।
त्वत्पाद - पंकजरजोऽमृतदिग्धदेहा -
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः।।

भावार्थ- भगवान के चरण-कमलों की धूलि से ही भयानक जलोदर रोग से पीड़ित रोगी भी ठीक हो जाते हैं।।45।।

46. आपाद - कंठ - मुरूश्रृंखलवेष्टितांगा -
गाढं बृहन्निगडकोटि - निघृष्टजंघाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगतबंधभया भवन्ति।।

भावार्थ- आपके नाम रूपी मन्त्र का सतत स्मरण करने से बन्धनों से जकड़े हुए कैदी भी स्वतः ही बन्धन से मुक्तहो जाते हैं।।46।।

47. मत्तद्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि -
संग्राम - वारिधि- महोदर - बंधनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते।।

भावार्थ- जो पुरुष आपके इस स्तोत्र का निरन्तर पाठ करता है, उस पुरुष के उक्तआठ एवं इनके समान सभी प्रकार के अन्य भय स्वतः ही नष्ट हो जाते ह।।47।।

48. स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रूचिरवर्ण विचित्रपुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं,
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः।।

भावार्थ- जो पुरुष इस स्तोत्र का सदैव पाठ करता है, कण्ठ में धारण करता है उस पुरुष को द्रव्य एवं भाव लक्ष्मी विवश होकर स्वयं वरण करती है।।48।।

प्रश्न-पत्र

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : सातवीं – जैन धर्म कोविद परीक्षा (22 जुलाई, 2012)

समय : 3 घण्टे उत्तरतालिका सहित अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- **10x1=(10)**

(a) सिंगबेरे का अर्थ है -

(क) इक्षु के टुकड़े (ख) अदरख

(ग) संचल नमक (घ) मर्दन करना (ख)

(b) साधु के लिए खरीद कर दिया गया अशन-वसनादि कहलाता है -

(क) कीयगडं (ख) उद्देसियं

(ग) अभिहडाणि (घ) नियागं (क)

(c) अष्टापद का हिन्दी अर्थ है -

(क) सावद्य चिकित्सा (ख) मालिश करना

(ग) जुआ (घ) छत्र-धारण (ग)

(d) दशाश्रुतस्कन्ध में निदान करने के कितने रूप बतलाये गये हैं -

(क) छ : (ख) सात

(ग) आठ (घ) नौ (घ)

(e) बिना जीव के दिखाई देने वाला शरीर है -

(क) औदारिक (ख) वैक्रिय

(ग) तैजस (घ) कार्मण (क)

(f) वैयावच्च के अधिकारी बताये गए हैं -

(क) आठ (ख) नौ

(ग) दस (घ) बारह (ग)

(g) निश्चय में (संग्रह नय की अपेक्षा) जीव का भेद होता है -

(क) तीन (ख) दो

(ग) एक (घ) उपर्युक्त सभी (ग)

(h) बादर पृथ्वीकाय का भेद है -

(क) गेरू (ख) भोड़ल

(ग) हिंगलू (घ) उपर्युक्त सभी (घ)

(i) एक चिनगारी में तेऊकाय के जीव होते हैं -

(क) संख्यात (ख) असंख्यात

(ग) अनन्त (घ) परिमित (ख)

(j) छठा प्रातिहार्य है -

(क) पुष्पवृष्टि (ख) दिव्यध्वनि

(ग) भामण्डल (घ) स्फटिक सिंहासन (क)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1=(10)**

(a) गृहस्थ से सावद्य प्रश्न करना या उसकी कुशलक्षेम पूछना निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिए अनाचीर्ण है। हाँ

(b) दशवैकालिक सूत्र के क्षुल्लकाचार कथा अध्ययन में 5 प्रकार के सचित्त नमक की चर्चा की गई है। नहीं

(c) जैन मुनि मूली, अदरख, कच्चे इक्षु खण्ड आदि सचित्त कंद का उपयोग नहीं करता है। हाँ

(d) साधु की भिक्षा विधि में नित्य पिण्ड की तरह द्वितीय पिण्ड को भी अनाचीर्ण कहते हैं। नहीं

(e) माता देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि से 81 वें दिन भगवान महावीर के जीव का संहरण हुआ था। नहीं

(f) पुण्य और पाप दोनों बंधते समय अच्छे और भोगते समय बुरे लगते हैं। नहीं

(g) एक छोटे से कंकर में पृथ्वीकाय के असंख्याता जीव होते हैं। हाँ

(h) सोलह कवल प्रमाण आहार करना आधी ऊनोदरी कहलाता है। हाँ

(i) छद्मस्थों की अपेक्षा से योगों का निरोध करना 'ध्यान' कहलाता है। नहीं

(j) भक्तामर स्तोत्र से भयानक जलोदर रोग से पीड़ित रोगी भी ठीक हो जाते हैं। हाँ

प्र.3 मुझे पहचानो :- **10x1=(10)**

(a) मैं वर्षाकाल में कायिक चेष्टाओं को वश में रखकर समाधिभाव में लीन रहता हूँ। मुनि/निर्ग्रन्थ/श्रमण

(b) मैं अग्निकुमार देव द्वारा द्वारिका में चलायी जाने वाली वायु हूँ। संवर्तक

(c) मैंनें बिना उपदेश के ही पदार्थ विशेष को देखकर दीक्षा धारण करके मुक्ति प्राप्त की है। प्रत्येक बुद्ध सिद्ध

(d) मैं चौदह राजू प्रमाण लोक के असंख्यातवें भाग में यानी 45 लाख योजन प्रमाण क्षेत्र में अवस्थित हूँ। सिद्ध जीव

(e) मुझे समझाने के लिए मोदक का दृष्टान्त दिया जाता है। चार प्रकार के बन्ध

(f) मैं जीव अथवा अजीव का विदारण-चीर फाड़ से लगने वाली क्रिया हूँ। वेयारणिया/वैदारणिकी

(g) मैं जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला पर्वत हूँ। चूल हेमवन्त

(h) मैं वह पाप हूँ जो चुगली करने या किसी के दोष प्रकट करने से बंधता हूँ। पैशुन्य

(i) मैं वह पुण्य हूँ जो शय्या, पाट-पाटला आदि देने से बंधता हूँ। शयन पुण्य

(j) मैं अन्तरद्वीपों में निवास करने वाला अल्पकषायी, एकान्त मिथ्यादृष्टि मनुष्य हूँ। 56 अन्तर्द्वीपज

प्र.4 प्रश्न एवं उत्तर दोनों क्रम से नहीं दिये हुए हैं, आप उत्तर की जोड़ी मिलाकर सही उत्तर रिक्त स्थान में लिखिए :- **10x1=(10)**

(a) ओसामण - अनाथी मुनि चावल का मांड

(b) गायब्भंग - जुलाब लेना बिना कारण तैलादि की मालिश

(c) वेयावडियं - शरीर को न खुजलाना सेवा करना या कराना

(d) अशरण भावना- चावल का माँड अनाथी मुनि

(e) नालीए - शरीर पर उबटन करना पासों से खेल खेलना

(f) अकंडूअए- बिना कारण तैलादि की मालिश शरीर को खुजलाना

(g) निर्जरा भावना- पांसों से खेल खेलना अर्जुन अणगार

(h) गायस्सुव्वट्टणाणि- प्रातिहार्य शरीर पर उबटन करना

(i) दिव्यध्वनि- सेवा करना या कराना प्रातिहार्य

(j) विरेयणे - अर्जुन अणगार जुलाब लेना

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए :- 7x2=(14)

(a) अनाचीर्ण किसे कहते हैं ?

निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिए जिनका आचरण निषिद्ध है, वे अनाचीर्ण कहलाते हैं।

(b) भिक्षु प्रतिमा की कोई दो विशेषताएँ लिखिए।

1. पहली प्रतिमा के धारक साधु एक माह तक एक दत्ति अन्न की तथा एक दत्ति पानी की प्रतिदिन लेते हैं। (दत्ति- एक साथ, धार खण्डित हुए बिना, जितना पात्र में पड़े)
2. यह दत्ति एक व्यक्ति के विभाग में आये हुए भोजन में से ली जाती है। गर्भवती या छोटे बच्चे की माँ के लिये बनाया गया भोजन वे नहीं लेते। दुग्धपान छुड़वाकर भिक्षा देने वाली स्त्री से अथवा आसन्न-प्रसवा (जिनका प्रसव काल निकट हो) स्त्री से उसको उठाकर भोजन नहीं लेते। जिसके दोनों पैर देहली के भीतर हो या बाहर हो, उससे भी आहार नहीं लेते। एक पैर भीतर तथा एक पैर देहली के बाहर हो, उससे आहार लेते हैं।
3. प्रतिमाधारी साधु छः प्रकार से भिक्षा ग्रहण करे- 1. पेटी के आकार- सन्दूक के चारों कोनों के आकार से, 2. अर्धपेटी- दो कोनों के आकार से, 3. गौ मूत्र के आकार- एक घर इधर से, दूसरा घर सामने के आगे से, 4. पतंगे के आकार से- एक घर फरस कर बीच-बीच में घर छोड़कर भिक्षा लेना, 5. शंखावर्त्त- गोल आकार से, 6. गतप्रत्यागत- जाते हुए करे तो आते हुए नहीं तथा आते हुए करे तो जाते हुए नहीं।
4. भिक्षाचरी के लिए दिन के आदि, मध्य और अन्त इन तीन भागों में से किसी एक भाग में जाते हैं।
5. शरीर की शुश्रूषा का त्याग करे, शरीर की ममता से रहित हो तथा देव, मनुष्य, तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग समभाव से सहन करे।
6. परिचित स्थान पर एक रात्रि तथा अपरिचित स्थान पर दो रात्रि ठहर सकते हैं।
7. प्रतिमाधारी चार कारण से बोलते हैं- 1. याचना करते, 2. मार्ग पूछते, 3. आज्ञा प्राप्त करते, 4. प्रश्न का उत्तर देते।
8. तीन स्थान में निवास करें- 1. बाग-बगीचा, 2.श्मशान- छत्री, 3. वृक्ष के नीचे।
9. तीन प्रकार की शय्या ले सकते हैं- 1. पृथ्वी, 2. शिलापट्ट, 3. काष्ठ का पट्ट।
10. प्रतिमाधारी साधक पाँव से काँटा, आँख से धूल-तृण अपने हाथ से नहीं निकाले।
11. जहाँ सूर्यास्त हो जाये वहाँ से एक कदम भी आगे विहार नहीं करे, सूर्योदय के पश्चात् विहार करे।
12. हाथी, घोड़ा, सिंह आदि हिंसक जानवर आने पर भयभीत होकर मार्ग नहीं छोड़े। किन्तु उनसे कोई जानवर डरता हो तो रास्ता छोड़ देवे। मकान में आग लग जाये और स्त्री आदि आ जावे तो भय से बाहर नहीं निकले।
13. अशुचि निवारण एवं भोजन के पश्चात् हाथ-मुँह आदि धोने के अतिरिक्त, हाथ, पाँव, दाँत, आँख, मुख आदि नहीं धोवे।

(c) अन्तिम दो निदान लिखिए।

अगले जन्म में श्रावक बनने हेतु निदान करना।

अगले जन्म में साधु बनने हेतु निदान करना।

(d) मेरे सहोदर छोटा भाई होगा, यह बात तो देवकी को कृष्ण ने कही, किन्तु उसके दीक्षित होने की बात क्यों नहीं कहीं ?

जिस भावना से देवकी ने पुत्र की अभिलाषा की उसमें कहीं यह बात चिन्ता रूप बनकर रंग में भंग करने वाली न बन जाय, इस विवेक से सम्भव है कृष्ण ने देवकी को अपने छोटे भाई के दीक्षित होने की बात नहीं कही हो।

(e) आगामी चौबीसी में श्रीकृष्ण बारहवें तीर्थंकर बनेंगे, यह ज्ञात हो जाने पर भी किसी साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका ने उन्हें वन्दन किया हों, ऐसा उल्लेख क्यों नहीं ?

जैन धर्म में भाव निक्षेप मुख्य है। भाव निक्षेप जिसमें मिले, उसी नाम, स्थापना एवं द्रव्य निक्षेप वालों को जैन धर्म वन्दनीय मानता है। श्रीकृष्ण के तीर्थंकर नाम कर्म का बन्ध अवश्य हो चुका था, किन्तु उस समय तीर्थंकर का भाव निक्षेप नहीं होने से किसी ने उन्हें वन्दन-नमस्कार नहीं किया।

(f) क्या श्रमण निर्ग्रन्थ के लिए गृहस्थ के घर से द्वितीय पिण्ड लाना कल्प विरूद्ध है? समझाइए।

नित्य एक ही घर से आमंत्रण पूर्वक आहारादि लेना नित्य पिण्ड अनाचीर्ण है, द्वितीय पिण्ड अनाचीर्ण नहीं है।

(g) प्रतिदिन 400 माताओं की वन्दना कैसे सम्भव है ? उसमें कितना समय लगता होगा ?

श्रीकृष्ण के कुल बहत्तर हजार माताएँ थीं। वे प्रतिदिन 400 माताओं के चरण-वन्दन के लिये जाते थे। नित्य 400 माताओं को वन्दना करने पर 72000 माताओं की छह मास में वन्दना पूरी होती थी। अत: देवकी महारानी की चरण-वन्दना के लिये भी श्रीकृष्ण को छह मास लग जाते थे।

प्र.6 निम्न प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में लिखिए :- (कोई छह) **6x3=(18)**

(a) स्थिति बन्ध को उदाहरण देकर समझाइए।

कुछ मोदक एक सप्ताह तक, कुछ एक पक्ष तक, कुछ एक माह तक विकृत नहीं होते। इस मर्यादा के उपरान्त वे खराब हो जाते हैं। इसी प्रकार कोई कर्म आत्मा के साथ अन्तर्मुहूर्त तक तो कोई बीस कोडा-कोडी सागरोपम तक और कोई सत्तर कोडा-कोडी सागरोपम तक रहते हैं। इस प्रकार कर्मों का अलग-अलग काल मर्यादा तक अपने स्वभाव का त्याग न करते हुए आत्मा के साथ रहना, स्थिति बन्ध है।

(b) शुक्ल ध्यान के 4 आलम्बन लिखिए।

1. खंती (क्षमा)- क्रोध का त्याग, 2. मुत्ति (मुक्ति)- लोभ का त्याग, 3. अज्जवे (आर्जव)- माया का त्याग, 4. मद्दवे (मार्दव)- मान का त्याग।

(c) स्वाध्याय के भेदों के नाम लिखिए।

1. वाचना, 2. प्रतिपृच्छना, 3. परिवर्तना, 4. अनुप्रेक्षा, 5. धर्मकथा।

(d) शुश्रुषा विनय के कोई 4 भेद लिखिए।

1. ज्ञान विनय, 2. दर्शन विनय 3. चारित्र विनय 4. मन विनय 5. वचन विनय 6. काय विनय 7. लोकोपचार विनय।

(e) प्रायश्चित्त किसे कहते हैं ?

धारण किये हुए व्रतों में प्रमाद से लगने वाले दोषों की जिससे शुद्धि हो, उसे प्रायश्चित्त कहते हैं।

(f) कायक्लेश तप के 4 भेद लिखिए।

1. ठाणट्ठितिए (स्थान-स्थितिक) कायोत्सर्ग करके खड़ा रहना, 2. ठाणाइए (स्थानातिग) अतिशय रूप से कायोत्सर्ग करना, 3. उक्कुडु आसणिए (उत्कटुकासनिक)- उकडु आसन से बैठना, 4. पडिमट्ठाई (प्रतिमास्थायी)- एक मासिकी, दो मासिकी आदि प्रतिमा अंगीकार करके विचरना।

(g) वृत्ति संक्षेप किसे कहते हैं ? इसके 2 भेद लिखिए।

अभिग्रह लेकर भिक्षा की वृत्तियों का संक्षेप करना वृत्ति संक्षेप हैं। इसके भेद 1. दव्वाभिग्गह चरए (द्रव्याभिग्रह चरक)- द्रव्य विशेष का अभिग्रह धारण कर भिक्षाचर्या करना, 2. खेत्ताभिग्गह चरए (क्षेत्राभिग्रह चरक) स्वग्राम, परग्राम, अमुक मौहल्ला आदि क्षेत्र विशेष का अभिग्रह लेकर भिक्षाचर्या करना।

(h) यावत्कथिक अनशन को स्पष्ट करते हुए इसके भेद समझाइए।

जीवन पर्यन्त के लिए किया जाने वाला अनशन, यावत्कथिक है। भेद- पादपोपगमन, इंगितमरण और भक्त- प्रत्याख्यान। इन तीनों के दो-दो भेद- 1. निहारी (गाँव में होवे- अग्नि संस्कार सहित) 2. अनिहारी- (गाँव के बाहर होवे- अग्नि संस्कार रहित)।

प्र.7 निम्न रिक्त स्थानों की पूर्ति करके उनका हिन्दी भावार्थ लिखिए :- (कोई सात)

7x4=(28)

(a) सिज्जायर पिंडं च, आसंदी पलियंकए।

गिहंतर निसिज्जा य, गायस्सुवट्टणाणि य।।

भावार्थ :-सिज्जायर पिंडं- शय्यादाता के यहाँ से आहारादि लेना। च आसंदी- और बेंत आदि से बने कुर्सी या मूढ़े आदि पर बैठना। पलियंकए- पलंग का उपयोग करना, उस पर बैठना, सोना। गिहंतर निसिज्जा (निसेज्जा) य- गृहस्थ के घर में या दो घरों के बीच में बैठना। य- और। गायस्सुव्वट्टणाणि- शरीर पर उबटन करना।

(b) दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहित्तु य।

के इत्थ देवलोएसु, केई सिज्झंति नीरया।।

भावार्थ :- निर्ग्रन्थचर्या को अपना करके, दुष्कर तप-नियमों का आचरण करके और दुस्सह परीषहों को सहन करके कई साधक तो सर्वथा कर्म रज को दूर कर सिद्ध हो जाते हैं और कई उच्च देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।

(c) पंचासव-परिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया।

पंचनिग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदंसिणो।।

भावार्थ :-'निर्ग्रन्थ' पाँच आश्रवों के त्यागी, तीन गुप्तियों से गुप्त, षट्काय जीवों की यतना करने वाले, पाँच इन्द्रियों को वश में रखने वाले, धीर और ऋजुदर्शी होते हैं।

(d) सोवच्चले सिंधवे लोणे, रोमालोणे य आमए।
सामुद्दे पंसुखारे य, कालालोणे य आमए।।

भावार्थ :- जैन साधु के लिए सचित्त नमक अग्राह्य बतलाया है, कारण कि कच्चे नमक में असंख्य पृथ्वीकाय के जीव माने गये हैं। त्यागी मुनि के लिए 1. संचल लवण, 2. सैंधव लवण, 4. रोम का लवण, 4. समुद्री लवण, 5. ऊसर भूमि का लवण और, 6. काला लवण, इन्हें सचित्त होने पर ग्रहण करना वर्जित है।

(e) शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रय-द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद् - दिवाकर - निरंतर भूरिसंख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम्।।

भावार्थ :-इस श्लोक में 'भामण्डल' नामक सातवें प्रातिहार्य का वर्णन है। भामण्डल की प्रभा करोड़ों सूर्य के समान तेजयुक्त होते हुए भी आतप देने वाली न होकर चन्द्रमा के समान शीतल व रात्रि का अन्धकार हरने वाली है।

(f) इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र ! धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतःप्रहतान्धकारा,तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि।।

भावार्थ :- जैसे प्रकाशमान तारागण सूर्य के समान प्रकाशित नहीं हो सकते, वैसे ही हरिहरादि देव आपकी समवसरण जैसी विभूति को धारण नहीं कर सकते।

(g) कुन्ताग्रभिन्नगज- शोणित - वारिवाह -वेगावतार - तरणातुरयोध - भीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-स्त्वत्पाद - पंकजवनाश्रयिणो लभन्ते।।

भावार्थ :- जहाँ रक्त पानी की तरह बह रहा हो, ऐसे महासंग्राम में भी आपके चरण -कमलों की सेवा करने वाले भक्तजन आसानी से विजय प्राप्त कर लेते हैं।

(h) रक्तेक्षणं समदकोकिल - कंठनीलं, क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंक - स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः।।

भावार्थ :- आपके नामरूपी नागदमनी जड़ी होने से भयानक सर्प भी कुछ नहीं करता। अर्थात् भक्तजन साँपों से निर्भय रहते हैं।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : सातवीं – जैन धर्म कोविद (परीक्षा 16 जुलाई, 2017)

समय : 3 घण्टे अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- 10x1 = (10)

(a) संजया का अर्थ है-

(क) इन्द्रियों को वश में करना (ख) दया पालन करने वाले संयमी

(ग) सूर्य की आतापना लेना (घ) संयम का पालन करने वाले ( )

(b) दसवाँ अनाचीर्ण है -

(क) वीअणे (ख) गिहिमत्ते

(ग) किमिच्छए (घ) सन्निही ( )

(c) निर्ग्रन्थ महर्षियों के लिए कितने अनाचीर्ण कहे गये हैं -

(क) 42 (ख) 47

(ग) 52 (घ) 48 ( )

(d) बिना कारण तैलादि की मालिश करना कहलाता है -

(क) गायब्भंग (ख) धूवणे

(ग) विरेयणे (घ) विभूसणे ( )

(e) संवाहणा का अर्थ है -

(क) दाँतों को धोना (ख) मर्दन करना

(ग) दर्पण में मुँह देखना (घ) अग्नि का आरम्भ करना ( )

(f) जीव रूपी तालाब में कर्मरूपी पानी ..... रूपी नालों द्वारा आता है-

(क) पाप (ख) संवर

(ग) आश्रव (घ) पुण्य ( )

(g) कसारी किसका भेद है -

(क) चौरेन्द्रिय (ख) तेइन्द्रिय

(ग) ऐकेन्द्रिय (घ) बेइन्द्रिय ( )

(h) निम्न में तेइन्द्रिय का भेद है -

(क) पतंगिया (ख) अलसिया

(ग) धनेरिया (घ) भंवरा ( )

(i) ''वरूण'' कौन सा देव है -

(क) ज्योतिष (ख) किल्विषी

(ग) ग्रैवेयक (घ) लोकान्तिक ( )

(j) ''पुण्य तत्त्व'' कितने प्रकार से भोगा जाता है-

(क) 42 (ख)82

(ग) 18 (घ) 20 ( )

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1 = (10)**

(a) विभूसा आदि से जीव हिंसा के साथ रागवृद्धि संभव नहीं है। ( )

(b) महर्षि दुःख-मुक्ति के लिए आत्म-साधना में अपनी शक्ति लगाते हैं। ( )

(c) नियागं का अर्थ है-सामने से लाकर दिया गया आहार। ( )

(d) सावद्य चिकित्सा करना तेगिच्छं अनाचीर्ण है। ( )

(e) अवशेष कर्मों को खपाने के लिए मनुष्य से देवलोक में जाते हैं। ( )

(f) प्रतिमाओं के पालन का वर्णन वृहतकल्प सूत्र में है। ( )

(g) खपरीया बेइन्द्रिय का भेद है। ( )

(h) सम्मूर्च्छिम मनुष्य संज्ञी एवं तीनों दृष्टि वाले होते हैं। ( )

(i) अजीव के जघन्य 14 भेद होते है। ( )

(j) अन्यत्व भावना नमिराज ऋषि ने भाई थीं। ( )

प्र.3 मुझे पहचानो :- **10x1 = (10)**

(a) मैं ग्रीष्मकाल में सूर्य की आतापना लेता हूँ। .....

(b) कई साधक मुझे सर्वथा दूर कर सिद्ध हो जाते हैं। .....

© मेरे लिए सचित्त नमक अग्राह्य बताया गया है। .....

(d) मैं धैर्यवान एवं निस्पृह होता हूँ। .....

(e) निर्ग्रन्थ के लिए मुझे खेलना निषिद्ध है। .....

(f) मेरा निर्माण कुबेरदेव की बुद्धि से हुआ है। .....

(g) मेरे कारण बिना उपयोग से अज्ञानवश संयम में दोष लगता है। .....

(h) मैं छह काय के जीवों की विराधना से लगने वाली क्रिया हूँ। .....

(i) मेरा बंध किसी पर झूठा दोष लगाने से होता है। .....

(j) मेरे कुल 46 भेद हैं। .....

प्र.4 निम्न प्रश्नों के उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए। **14x2 = (28)**

(a) **पहले, पन्द्रहवें, बीसवें एवं पच्चीसवें अनाचीर्ण का नाम लिखिए।**

.....

.....

(b) **गाथा को पूर्ण कीजिए।**

परीसह .....

.....**महेसिणो।।**

(c) **शुद्ध श्रमणाचार-पालन का क्या फल है ?**

.....

.....

(d) **निदान किसे कहते हैं ?**

.....

.....

(e) **प्रतिमाधारी साधु कौन-कौन से स्थानों पर निवास करते हैं ?**

.....

.....

(f) **पाँच अनुत्तर विमान के नाम लिखिए।**

.....

.....

(g) **पाडुच्चिया का अर्थ लिखिए।**

.....

.....

(h) **प्रतिसंलीनता का अर्थ लिखिए। इसके कुल कितने भेद हैं ?**

.....

.....

(i) **धर्मध्यान की प्रथम अनुप्रेक्षा अर्थ सहित लिखिए।**

.....

.....

(j) **शुक्ल ध्यान का अंतिम लक्षण अर्थ सहित लिखिए।**

.....

.....

(k) **बंध के कितने भेद हैं ? प्रथम भेद का अर्थ लिखिए।**

.....

.....

(l) **रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-**

इत्थं .....।

.....परस्य।।

(m) **रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए-**

युद्धे .....।

.....लभन्ते।।

(n) **भक्तामर स्त्रोत्र की 33वीं गाथा मन्दार-सुन्दर.....वचसां ततिर्वा।। का भावार्थ लिखिए।**

.....

.....

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए : - **14x3=(42)**

(a) **गिहिणो .....आउरस्सरणाणि य। गाथा का भावार्थ लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

(b) **निम्नांकित गाथा को पूर्ण कर शब्दों के अर्थ लिखिए।**

सव्वमेयमणाइण्णं.....

.....**लहुभूय विहारिणं।।**

शब्दार्थ.....

.....

(c) **अनाचीर्णों का वर्णन किस सूत्र के कौन से अध्ययन में किया गया है ? उस अध्ययन की प्रथम गाथा भी लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

(d) **यदि सोमिल गजसुकुमाल की प्रतिहिंसा नहीं करता तो गजसुकुमाल मोक्ष कैसे जाते ?**

.....

.....

.....

.....

(e) **क्या छप्पन करोड़ यादव द्वारिका नगरी में ही रहते थे ? स्पष्ट कीजिए।**

.....

.....

.....

.....

(f) **भिक्षु प्रतिमा पालन का विस्तृत वर्णन कौनसे आगम में है ? प्रतिमा आराधन का प्रथम नियम लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

(g) **प्रायश्चित्त किसे कहते हैं ? इसके कितने भेद हैं ? दस प्रकार के प्रायश्चित्त के नाम लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

(h) **जीव के उत्कृष्ट भेदों की संख्या लिखते हुए स्थलचर के भेद समझाइए।**

.....

.....

.....

.....

(i) **संवर किसे कहते है ? इसके उत्कृष्ट भेद कितने हैं ? स्पष्ट कीजिए।**

.....

.....

.....

.....

(j) **पुण्य कितने प्रकार से बंधता है और कितने प्रकार से भोगा जाता है ? पुण्य भोगने की प्रथम छह प्रकृतियों के नाम लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

(k) **कायक्लेश क्या है ? इसके कितने भेद हैं ? इसका पाँचवाँ, नवाँ एवं ग्यारहवाँ भेद लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

निम्न श्लोक को पूर्ण कर भावार्थ लिखिए।

(l) स्वर्गापवर्ग .....

.....

.....

.....प्रयोज्य।।

भावार्थ.....

.....

.....

(m) वल्गत्तुरंग .....

.....

.....

.....भिदामुपैति।।

भावार्थ.....

.....

.....

(n) आपाद.....

.....

.....

.....भवन्ति।

भावार्थ.....

.....

.....